पुरीपीठाधीश्वर शङ्कराचार्य श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी के द्वारा ता० २८-१०-१९८५ को मिश्रित धर्ममञ्च पर व्यंगोपहासपूर्ण असत्य भाषण युक्त, अशोभनीय चुनौती पूर्वक उछाले हुए अभद्र कीचड़ का प्रक्षालनात्मक उत्तर-

पङ्क प्रक्षालन

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती

(स्वामी हरिहराचार्य)

ब्रह्मविज्ञान पीठ नैमिषारण्य

सीतापुर (उ०प्र०)

पुरीपीठाधीश्वर शङ्कराचार्य श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी के द्वारा
ता० २८-१०-१९८५ को मिश्रित धर्ममञ्च पर व्यंगोपहासपूर्ण
असत्य भाषण युक्त, अशोभनीय चुनौती पूर्वक उछाले हुए
अभद्र कीचड़ का प्रक्षालनात्मक उत्तर-

पङ्क प्रक्षालन

काशी मुमुक्षु भवन वेद-
वेदाङ्ग पुस्तकालय
अस्सी वाराणसी
को
सादर समर्पित
स्वो० ...नन्द
ब्रह्मचारी
२२...

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती

(स्वामी हरिहराचार्य)
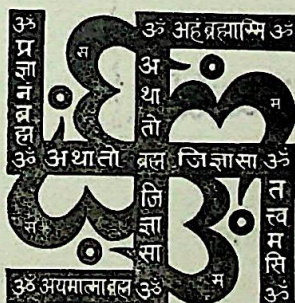
श्री ब्रह्मविज्ञान पीठ नैमिषारण्य
सीतापुर (उ०प्र०)

प्रकाशक :—

सनातनधर्म स्वयंसेवक महामण्डल

श्री ब्रह्मविज्ञानपीठ नैमिषारण्य

सीतापुर (उत्तर प्रदेश)

●

प्रथम संस्करण :—१०००

संवत् २०४२ फाल्गुन (मार्च-१९८६)

हरिद्वार कुम्भमहापर्व के सुअवसर पर

●

पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

(१) सुबोधानन्द ब्रह्मचारी, एवं महेश चेतन ब्रह्मचारी (मौजी बाबा)
श्री ब्रह्मविज्ञानपीठ, नैमिषारण्य, सीतापुर (उ० प्र०)

(२) विश्वनाथ अग्रवाल, कल्याणनिवास, छतरपुर (म० प्र०)

●

मूल्य :—१०) रु०

●

मुद्रक :—

कौल प्रेस, जेल रोड सीतापुर

प्रमुख सहयोगी

सद्गुरूनिष्ठ सन्त ओमप्रकाशानन्द जी (ओम बाबा) जिन्होंने इस ग्रन्थ के छपवाने में 'प्रूफ रीडिंग" आदि के द्वारा अथक परिश्रम किया है। मैं सद्गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें अपनी पवित्र आध्यात्मिक साधना में जगन्नियन्ता नारायण सफलता प्रदान करें।

धर्मनिष्ठ, भगवद्भक्त श्री विश्वनाथ जी अग्रवाल एवं श्रीमती उमा अग्रवाल छतरपुर (म० प्र०) जिन्होंने आध्यात्मिक बुद्धि से प्रेरित होकर प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशनार्थ व्यय होने वाली समस्त धनराशि का भार सहर्ष कृतज्ञता पूर्वक वहन किया है। मैं जगन्नियन्ता, जगदाधार परम नारायणतत्त्व एवं उन्हीं का साकार विग्रह स्वरुप सद्गुरूदेवभगवान से प्रार्थना करता हूँ कि इन द्रव्यदाताओं की धार्मिक बुद्धि एवं आध्यात्मिक निष्ठा को सुदृढ़ रखते हुए पराशान्ति प्रदान करें।

कर्तव्यनिष्ठ भगवद्भक्त ठा० ओमप्रकाशसिंह जी सहायक सेनानायक लखनऊ जिन्होंने सद्गुरूभक्ति एवं स्वधर्मनिष्ठा से प्रेरित होकर प्रेस आदि से सम्पर्क करते हुए समस्त जनरल व्यवस्था का निरीक्षण किया। मैं अनन्तकोटि ब्रह्माण्डाधिष्ठान नारायण तत्त्व और उन्हीं की प्रतिमूर्ति स्वरुप सद्गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी धार्मिक बुद्धि एवं परमात्मनिष्ठा को सुदृढ़ रखते हुए आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करें।

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती

(स्वामी हरिहराचार्य)

समर्पण

प्रचण्डपाखाण्ड विखण्डनोद्यतं
त्रयीशिरोऽर्थप्रतिपादने रतम् ।
बुधैर्नुतं योगकलाभिरावृतं,
नमामि तं श्रीगुरूशङ्करार्यम् ॥

महेश्वरपरावतार, भगवत्पूज्यपाद, निगमागम
सकलशास्त्रपारावार प्रस्थानत्रयी भाष्यकार
अखण्डभूमण्डलाचार्य, जगद्‌गुरू भगवान
आद्यशंकराचार्य की प्रतिष्ठा में
प्रगाढ़ श्रद्धाभक्ति निष्ठा
पूर्वक सादर
समर्पण

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती

भाष्यकार भगवान आद्य शंकराचार्य का

कुतार्किकभेददृष्टिं नास्तिककुदृष्टिं चोज्झित्वा मातृपितृसहस्रेभ्योऽपि हितैषिणा वेदेनोपदिष्टम् आत्मैकत्वदर्शनं शान्तदर्पैः आदरणीयम् ।

(कठोपनिषद् भाष्य २/१/१५)

*

सभी को कुतार्किक की भेददृष्टि और नास्तिक की कुदृष्टि का परित्याग कर सहस्रों माता-पिताओं से भी अधिक हितैषी वेद के उपदेश किए हुए आत्मैकत्व दर्शन का ही अभिमानरहित होकर आदर करना चाहिए ।

इसको पढ़ने के बाद ही ग्रन्थ पढ़ें:-

प्राक्कथन

धर्मोपदेश, भाषण, प्रवचन एक कला है और साथ ही वह विज्ञान भी है। इसमें अपने विचारों को व्यवस्थित शब्दावली में प्रस्तुत करना कला है साथ ही समाज के मनोभावों की स्थिति, प्रभाव और परिणाम का अनुसंधान करना विज्ञान है। इन दोनों पक्षों पर गम्भीरता एवं दूरदर्शिता पूर्वक घ्यान रखना प्रवक्ता का कर्तव्य है। इस बात को ध्यान में रखते हुए–

"व्याख्यान सभ्यतापूर्वक देना चाहिए। वक्ता को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि उनका यह धर्मोंपदेश दान कार्य भगवत्कार्य है,इस कारण इसका मुख्यफल श्रोताओं में सत्वगुण तथा सात्विकभाव का पोषण करना है, उनके किसी प्रकार हावभाव, चेष्टा या शब्द प्रयोग द्वारा श्रोताओं में राजसिक, तामसिक भाव का उदय हो या रागद्वेष, ईर्ष्या, जिघांसा आदि क्लिष्ट वृत्तियों का प्रोत्साहन प्राप्त हो तो जानना चाहिए कि, उनका परिश्रम धर्मनुकूल नहीं हुआ। उनके व्याख्यान द्वारा जो कुछ 'जोश' श्रोताओं में उत्पन्न हो वह भी धर्मानुकूल ही होना चाहिए। कोई–कोई वक्ता अपने व्याख्यान में वहुत से अपशब्दों का प्रयोग करके वीभत्सरस का उदय कराते हैं, कोई–कोई गाली बककर, गन्दे किस्से कहकर या खराब इंङ्गित हावभाव आदि दिखाकर श्रोताओं के मन को कलुषित कर देते हैं। कोई–कोई अन्यधर्मी या अन्य मतमतान्तरों के प्रति असभ्यता पूर्ण कटाक्ष करके श्रोताओं के हृदय में तामसी द्वेषभावमय 'जोश' भर दिया करते हैं। कोई–कोई एक दूसरे से लड़ा देने लायक शब्दों का प्रयोग करके वृथा जिघांसा वृत्ति का उदय करा देते हैं। यह सब निन्दनीय दोष हैं, जिनसे वक्ता को सदा सावधान रहना चाहिए। यदि कहीं पर परपक्षखण्डन की भी आवश्यकता हो तो जहाँ तक हो सके सभ्यतापूर्वक मण्डनमुखेन खण्डन ही प्रशंसनीय होगा, नंङ्गीगाली देना या तीव्र कटाक्ष करना उचित न होगा। वास्तव में नंङ्गी गाली या उत्कटखण्डन के द्वारा परपक्षविदलन न होकर प्रायः परपक्ष के जोश, उत्साह आदि और भी बढ़ जाया करते हैं, क्योंकि संघर्ष से ही शक्ति की वृद्धि होती है। ऐसे अवसर पर बहुधा उपेक्षा, मृदु सभ्यता युक्त सुन्दर समालोचना अथवा स्वपक्ष के उदार मण्डन

द्वारा स्वतः ही परपक्ष का खण्डन हो जाता है, जिसका प्रभाव सभ्य श्रेणी की जनता पर जादू का सा पड़ जाया करता है। अवश्य निम्नकोटि की जनता के लिए ऐसा उच्चकोटि का भाव कहीं कहीं पर फलप्रद या प्रभावोत्पादक नहीं होता है,किन्तु ऐसे मौके पर भी वक्ता को सभ्यताच्युत कदापि नहीं होना चाहिए, यही सार तथ्य है।" (धर्म वि०)

उपरोक्त सावधानियों का ध्यान न रखने के कारण ही प्रवचन के परिणाम प्रायः विपरीत और अशोभनीय आते हैं, जिसके कि संसार में अनेकों ज्वलन्त उदाहरण हैं। पुरीपीठाधीश्वर शंकराचार्य श्रीमत् स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज के २८-१०-८५ को मिश्रित तीर्थ, नैमिषारण्य क्षेत्र, जनपद सीतापुर (उ०प्र०) का प्रवचन भी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण रहा। अपने उस अल्पकालिक विवादास्पद सिद्धान्त के प्रतिपादन में महाराजश्री इतना अधिक असावधान हुए कि अनेकों अशोभनीय वाक्यों, प्रमाणाभासों एवं सिद्धान्ताभासों को प्रस्तुत करते हुए व्यक्तिगत लक्ष्य बनाकर व्याजनिन्दा से कटाक्षपूर्ण अवांछनीय कीचड़ उछाला जिसका कि प्रत्यक्ष दर्शन २७-१०-८५ को रात्रिकालीन प्रसारित विचारों के माध्यम से प्राप्त हो चुका था, जो कि व्यंग्य,कटाक्ष हासोपहासपूर्ण था। उसका मर्यादित सामान्य प्रक्षालन करने मात्र से ही एक महान हृदयविदारक वितण्डावाद खड़ा करके चुनौती देते हुए खुलकर व्यक्तिगत कीचड़ उछाला। साथ ही अधिकार एवं आग्रहपूर्वक 'टू दि प्वाइन्ट' साल छः महीने में, भर में ही हमसे उत्तर भी माँगा। अतः उन्हीं के आदेशानुसार हमने उत्तर देने का प्रयास किया है जो कि उस कीचड़ का सहेतुक प्रक्षालन मात्र ही यह ग्रन्थ है।

इसमें कहीं-कहीं भाषा और शैली ने कठोरता आदि का जो मोड़ लिया है, वह श्री स्वामी जी महाराज की भाषा, भाव एवं शैली की प्रतिध्वनि तथा प्रतिक्रिया मात्र है। वैसे जहाँ तक हमारे व्यक्तिगत विचारों की बात है तदनुसार वयोवृद्ध आचार्य श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज हमारे परमश्रद्धास्पद हैं उनसे हमारा वैयक्तिक रंचक मात्र कोई भी किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

इस लघुकाय ग्रन्थ का आधार एवं उद्देश्य भी किन्हीं अनात्मवृत्तियों का पोषण करना नहीं है अपितु 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' ही है। इससे देश और समाज के व्यक्तियों के इन बिवादास्पद विषयों की उलझावपूर्ण अन्तरग्रन्थियों का सुलझावपूर्ण समाधान भी होगा। **ॐ उपशम्।**

स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती

विषय सूची

गार्गी बालब्रह्मचारिणी थीं।

इयं कुमारी युवतिर्ब्राह्मणानां गृहाद् बहिः।
निर्गता--------------- (आत्मपुराण ५|४४७)

इत्यादि कालपाशेन मोहितः स द्विजोत्तमः।
अवज्ञाय हितां गार्गीं सर्वदा ब्रह्मचारिणीम् ॥
(आत्मपुराण ५|४६८)

"इसके अतिरिक्त गार्गी जैसी विदुषी महिलायें भी भारत के पुण्य क्षेत्र में प्रादुर्भूत्त हुईं थीं, जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर, शास्त्रों के पठन पाठन और ब्रह्मानुसन्धान में जीवन व्यतीत कर दिया।"

(हिन्दू संस्कृति अंक, गीताप्रेस गोरखपुर पृ.सं. ६२५)

॥ ॐ श्री राजराजेश्वर्यै नमः ॥

क्या....गार्गी विवाहिता थीं !

ॐ नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥१॥
श्री शंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून्संततमानतोऽस्मि ॥२॥
स्वाराज्य साम्राज्य विभूतिरेषा भवत्कृपा श्री महिमप्रसादात् ।
प्राप्ता मया श्री गुरवे महात्मने नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु ॥३॥

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम् ।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ॥

अनन्तरत्न गर्भा भारत वसुन्धरा की पवित्र गोद को समलंकृत करने वाली महातपस्विनी बालब्रह्मचारिणी परमविदुषी परिव्राजिका सुलभा, विश्ववंद्या ज्ञान-वैराग्य उपरामता की मूर्तिमयी देवी, अवधूतवेशधारिणी, बालब्रह्मचारिणी परम विदुषी ब्रह्मवादिनी गार्गी एवं भारतीय परम्परा की पवित्र आध्यात्मिक श्रृङ्खला में निवृत्तिमार्गावलम्बिनी। अनेक तपस्विनी विभूतियों के सहित सम्पूर्ण नारि जाति के त्याग, तपस्या, ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि पवित्र जीवन के ऊपर तथा वीतराग, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ वेणुदण्डरहित भारतवर्ष के सहस्रों परमहंस, अवधूत, तुरीयातीत, साधु संन्यासियों के ऊपर पुरीपीठाधीश्वर शंकराचार्य श्रीमत् स्वामी निरञ्जनदेवतीर्थ जी महाराज ने अशोभनीय शब्दों का प्रयोग करके अपनी वाणी की स्वतन्त्रता का परिचय देते हुए जो कीचड़ उछाला उन अशास्त्रीय, असमीचीन हृदय विदारक, अभद्र असत्य प्रवचनांशों का निराकरणात्मक प्रक्षालन करूँगा ।

प्रथमतः अपने भाषण के मध्य में उपहासात्मक ढंग से श्री स्वामी जी महाराज ने जो वाक्य कहा और विवाद का मूलभूत कारण बना, "हमारे पास बहुत सी कालेज् की सिरफिरी लड़कियाँ आती हैं और वे मुझसे कहती हैं कि महाराज जी ! मैं विवाह नहीं करूँगी । मैं उनसे कहता हूँ "मत करो विवाह । विवाह तो कुतिया कुत्ते, गधी गधे नहीं करते हैं । तुम भी वैसे ही रहो ।"

इस वाक्य को आधार भूत बनाकर विभिन्न प्रमाणाभासों के द्वारा व्यंग्यात्मक शैली से "नारी का बिना विवाह कल्याण नहीं होता ।" यह सिद्ध करने का प्रयास किया । इस विषय में श्री स्वामी जी महाराज ने जिन प्रमाणाभासों, असत्यों एव

अभद्र शब्दों का आश्रय लिया, उन सभी को क्रमशः आवश्यकतानुसार उपस्थित करते हुए श्रुति-शास्त्र, शिष्टाचार सम्मत निराकरण किया जायेगा ।

जहां तक स्त्रियों के वैवाहिक जीवन एवं पातिव्रतधर्म का प्रश्न है जैसा कि शास्त्र में संकेत किया गया है:-

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः" (मनुस्मृति-२/६७)

इस सिद्धान्त में कोई विरोध नहीं है । यह संस्कार स्त्रियों के यज्ञोपवीत स्थानापन्न है । यह बात हर सनातनधर्मावलम्बी वर्णाश्रमधर्म को मानने वाला स्वीकार करेगा । इस विषय में विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं है । साधारण समाज को इसी पवित्र नियम में बंधकर ही अपने जीवन का कल्याण करना चाहिए । अव्यवहारिक और अशास्त्रीय विधि से ऐहिक सुखों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए । अन्यथा निश्चित ही वह पापपंक कलंक से अपने जीवन को अपवित्र एवं दुर्गन्ध पूर्ण करके पतित होगा ।

सनातनधर्म में विवाह संस्कार का उद्देश्य

सनातनधर्म में पाणिग्रहण संस्कार (विवाह संस्कार) भोगवासनाग्नि को प्रज्वलित कर उसमें मानव को पतंग की भांति जलाकर नष्ट करने के लिए नहीं है । अपितु स्वाभाविक असंयमित चित्तवृत्तियों को एक पातिव्रत एवं एक पत्नीव्रत धर्म द्वारा संयमित कर परमपुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष की ओर प्रवृत्त करने के लिए है । पुरुष अपनी असंयमित चित्तवृत्तियों को एक ही स्त्री में केन्द्रित करके अखिल ब्रह्माण्डोत्पादिनी मूल प्रकृति की अंशभूता प्रकृति (नारी) को अवलोक कर उससे निवृत्तिभाव पूर्वक पृथक हो श्री नारायणहरि के दिव्य माधुर्यमय स्वरूप में समाधिस्थ हो मुक्त हो जायेंगे । इसलिए पुरुष का विवाह है । नारी अपनी सहज बहिर्मुख चित्तवृत्ति को अखिल ब्रह्माण्डनायक के अंशभूत एक ही पति में केन्द्रीभूत करती है । उन्हीं में पातिव्रतधर्म के द्वारा तन्मय हो क्रमशः भक्ति, ज्ञान साम्राज्य में अधिकार प्राप्त कर महालक्ष्य स्वरूप मोक्ष पद को प्राप्त करेगी । इस हेतु नारी का विवाह है । इस प्रकार नारी स्वपति में भगवद् बुद्धि स्थापित कर उनकी सेवा स्वशरीर, प्राण इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को समर्पित करती हुई अनुभव करे कि उसका शरीर, शरीर की वेशभूषा, आभूषणालंकार समस्त गृहकार्य, मन का समस्त चिन्तन, प्राणों का समग्र व्यापार इन्द्रियों, का क्रियाकलाप सभी का सभी साक्षात् परमेश्वर स्वरूप, परम इष्ट स्वपति देवता की सपर्या (पूजा) हेतु है । जिस प्रकार एक अनन्य, अप्रतिम भक्त, सूक्ष्मदर्शी तत्ववेत्ता अपनी भासमती स्वतन्त्र सत्ता को श्री नारायण हरि के सुभग, शीतल, मृदुल श्री पादारविन्दों में मनसा, वाचा कर्मणा समर्पित कर उनके अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अप्रमेय,

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैक रस स्वरूप में एकात्म्यैक्यरूपेण समाधिस्थ हो शाश्वती शान्तिप्रदायक परम प्रयोजन स्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है। उसी प्रकार ही सद्योवधू वर्ग में विद्यमान स्त्री लक्षणों से संयुक्ता नारी अपने पति भगवान में अपना स्वत्व सनातनधर्मानुसारेण उपास्य-उपासक भाव से समर्पित करती हुई वासना जगत से पार हो परम लाभ को प्राप्त करे।

"धन्या सा जननी लोके, धन्यो ऽसौ जनकः पुनः।
धन्यः स च पतिः श्रीमान्, येषां गेहे पतिव्रता ॥
देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद् भार्यया गृहे।
गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता ॥
यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत्।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा, सदनं पावनं भवेत् ॥

(स्कन्द० ब्रह्मखण्ड (ध.ख.) अ. ७)

अर्थ-संसार में वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है तथा वह भाग्यवान पति धन्य है जिनके घर में पतिव्रता स्त्री विराजती हैं। घर में भार्या के होने से ही देवताओं, पितरों और अतिथियों की तृप्ति होती है। वास्तव में गृहस्थ उसी को समझना चाहिए जिसके घर में पतिव्रता स्त्री है। जैसे गंगा में स्नान करने से शरीर पवित्र होता है, इसी प्रकार पतिव्रता का दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।

"शतजन्म सुपुण्यानां गृहे जाता पतिव्रता
पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा।
ये ह्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान्
वैराग्यमार्गेण गुणान् विहाय।
ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः,
सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम् ॥

(वाराह मिहिर कृत बृहत्संहिता)

अर्थ-जो सौ जन्मों से उत्तम पुण्य का संचय करते आ रहे हैं, उन्हीं के घर में पतिव्रता कन्या जन्म लेती है। पतिव्रता को जन्म देने वाली माता परमपवित्र है, तथा उसके पिता भी जीवनमुक्त हैं। जो लोग केवल वैराग्य मार्ग का सहारा ले स्त्रियों के गुणों को छोड़कर सिर्फ उनके दोषों का वर्णन करते हैं, वे दुर्जन हैं-ऐसा मेरे मन का अनुमान है। वे दोष वाक्य उनके मुख से सद्भावना से प्रेरित होकर नहीं निकलते हैं।

इस प्रकार सनातनधर्म द्वारा निर्देशित वैवाहिक संस्कार द्वारा सुसंस्कृता नारी पातिव्रतधर्म परिपालन द्वारा अनायास ही उत्तमा गति को क्रमशः उपलब्ध कर सर्वाधिष्ठान श्री नारायण हरि में तन्मय हो जन्म-व्याधि-जरा-मरण से सदैव के लिए निर्मुक्त हो शाश्वती शान्तिप्रदायक परमाभयपद को प्राप्त होती है जहां से पुनः वापस हो संसार चक्र में भ्रमित नहीं होना पड़ता–

'नच पुनरावर्तते. न च पुनरावर्तते' (छांदोग्योपनिषद् ८/१५/१)

रही बात द्वितीय पक्ष की अविवाहिता तपस्विनी सर्वत्यागपूर्वक निवृत्तिमार्गावलम्बिनी नारियों की, उनका विवरण देते हुए जब श्री गार्गी के जीवन विषयक चर्चा उपस्थित की गयी, तब जो श्री निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज ने कहा–

"इसके अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ में यह नहीं लिखा हुआ है कि गार्गी जन्म भर कुमारी रही, उसने विवाह नहीं किया। यह भारतीय साहित्य के किसी भी ग्रन्थ में नहीं लिखा हुआ है, उसने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ किया, यह 'वृहदारण्यक' में है। वह विदुषी थी, यह भी वृहदारण्यक में है, लेकिन उसने विवाह नहीं किया, यह किसी भी ग्रन्थ में, किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। कोई सज्जन बतायें तो हम उसको अपना गुरु मानें।"

इसी संदर्भ में पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज का आश्रय लेकर व्याजोक्ति से यह चुनौती भी दी:–

"जो अपने सच्चे पिता से पैदा हुआ हो, जिसने अपनी मां का दूध पिया हो, वह यहां आ करके सिद्ध करे, किस स्त्री ने विवाह नहीं किया।"

श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज की उपरोक्त चुनौती को स्वीकार करते हुए "गार्गी अविवाहिता थीं, बाल ब्रह्मचारिणी थीं" यह बात भारतीय साहित्य के प्रामाणिक ग्रन्थों से ही सिद्ध करूंगा। महाराज जी भी इस अवस्था में अपनी चुनौती को याद रखते हुए या तो हमारी बात को लिखित रूप से असिद्ध करें या अपनी बात को "कोई सज्जन बतायें तो हम उसको अपना गुरु मानें।" ध्यान में रखते हुए ईमानदारी पूर्वक शिष्यत्व स्वीकार करें।

गार्गी आजीवन ब्रह्मचारिणी रहीं। उन्होंने अपना पाणिग्रहण नहीं किया। वे जन्म से ही सदैव नग्नावस्था अवधूतवेश में रहीं और उच्चतम आध्यात्मिक तर्कों एवं औपनिषदिक विश्लेषण द्वारा सदैव समाधिअवस्था, ब्राह्मीस्थिति में सुप्रतिष्ठित 'आत्मक्रीडः आत्मरतिः', वह अपने को स्त्री ही नहीं मानती थीं, तो ऐसी अलौकिक अवस्था में विवाहादि का प्रश्न ही नहीं उठता है, यथा–'आत्मपुराण' का पञ्चम् खण्ड (अध्याय) जो कि 'वृहदारण्यकोपनिषद्' की विस्तृत व्याख्या स्वरूप ही है वहां पर वर्णित है, जनक की विद्वत्सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य को अपना परिचय देते हुए कहा–

"प्रसिद्धा सर्वलोकेषु, गार्गी वाचक्नवीत्यहम् ।
प्रायो बुद्धाधिका लोके, पुरुषेभ्योपि योषितः ॥३२९॥
साहसेन चर्वैर्येण, रागतः क्रोधितोपि च ।
तासां मां प्रथमां विद्धि, सरस्वत्यासमांधिया ॥३३०॥
अहं पश्यामि विप्रेन्द्र, जगदेतदपौरुषं ।
नपुंसकमहं तद्वदहं, स्त्री च पुमानहम् ॥३३१॥
नपुंसकः पुमान् ज्ञेयो, यो न वेत्ति हृदि स्थितं ।
पुरुषं स्वप्रकाशं तमानन्दात्मानमव्ययम् ॥३३२॥
अयमेव पुमान्योषिन्नाहं पीनपयोधरा ।
यतः स्वस्मात्परस्तस्य पतिरस्तिस्त्रिया यथा ॥३३३॥
काम क्रोधादिभिस्तद्वद्भुजगैर्भुज्यते पुमान् ।
अज्ञो वारांगनातुल्यो नाहमेवं कथंचन ॥३३४॥
अज्ञो गर्भं दधात्यत्रधातु सप्तममातुरः ।
कालेन पुरुषेणासौ, संयुक्ता ललना यथा ॥३३५॥
नाहमस्मिन्वयस्यद्यदुःसहेयौवनेवरे ।
वर्तमानास्थिता यूनां मध्यएमीह विक्रियाम् ॥३३६॥
नग्नाहं भवतां मध्ये, स्थितारम्येकांत गायथा ।
निरीक्षं तेन मां विप्राविक्रिया भीरवः स्वयम् ।
पश्यंत्यहममून्सर्वान्स्पृशाम्यात्म करादिभिः ॥३३७॥
ततः स्त्रीनामसाज्ञेयास्त्यायतेरर्थधारिणी ।
या लोकेनाहमेवं स्यां कथं तेनवधूरहम् ॥३३८॥
स्त्यायतेः शब्द संघातः स्मृतोर्थोत्र मनीषिभिः ।
अहं वधूः समीचीना युवतिः सुपयोधरा ॥३३९॥
कामिनी मत्समाना का विद्यतेत्र नितंबिनी ।
अयं मम पतिः पुत्रस्तद्वदेषा सुता तथा ।
धनं धान्यं गृहे मेस्ति वंध्या चाहं कुटुम्बिनी ॥३४०॥
इत्यादि शब्द संघातः स्त्यायत्यर्थ उदाहृतः ।
माया पिशाची संपर्कादात्मनो बोधशून्यतः ।
सयेषु वर्तंते तेस्युः स्त्रियोत्रमुनिसत्तम ॥३४१॥
आत्मबोधेन ये पूर्णाः पुरुषास्तउदाहृताः ।
यादृशास्तादृशाः संतु शरीरेण द्विजोत्तम ॥३४२॥

(आत्मपुराण अ. ५/३२९-३४२ तक)
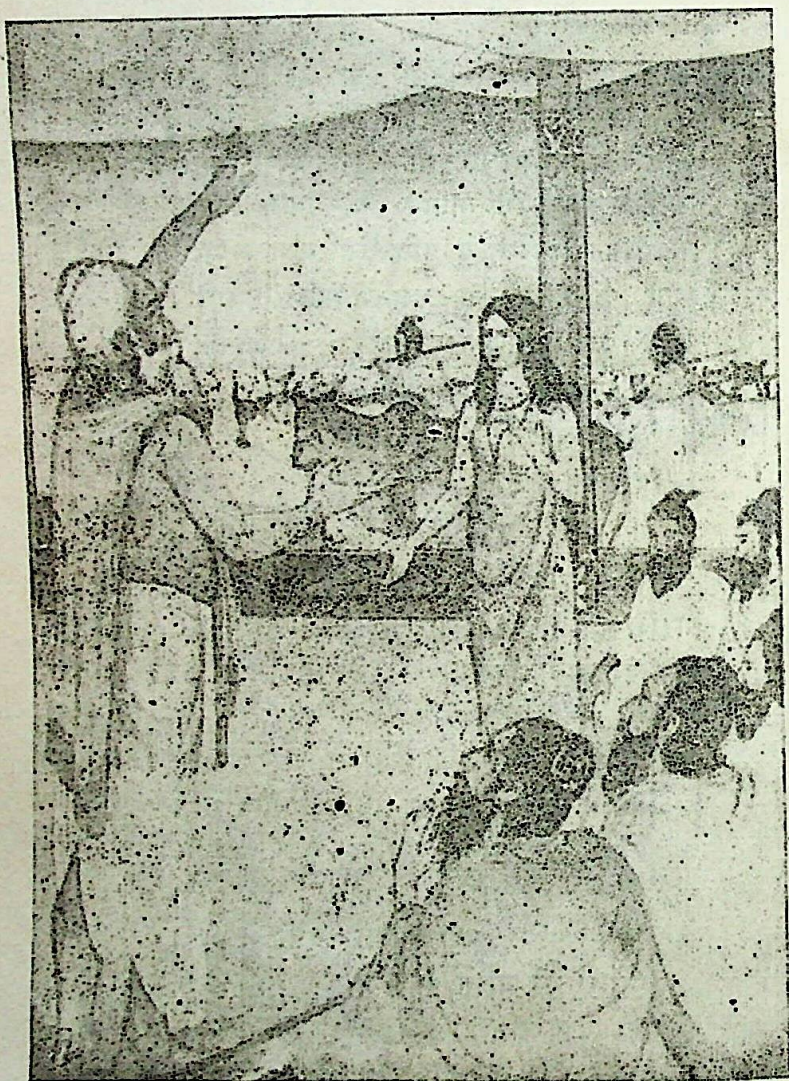
महर्षि याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करती हुई
बालब्रह्मचारिणी गार्गी

अर्थ-गार्गी बोलीं : हे याज्ञवल्क्य ! इस लोक में जैसे आप प्रसिद्ध हैं, वैसे मैं गार्गी भी प्रसिद्ध हूँ । आप जैसे अधिक विद्वान हैं, वैसे मैं गार्गी भी अधिक बुद्धिमती हूँ । क्योंकि नीतिशास्त्र में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि में अविवेक, धैर्य, राग, क्रोध चारगुना अधिक कहा है, उन समस्त स्त्रियों में सरस्वती के समान तीक्ष्ण बुद्धि वाली हूँ ।

शंका-हे गार्गी ! तेरी कौन ऐसी बुद्धि है ? जिस बुद्धि के कारण तू सबसे अधिक अपने को मानती है ।

समाधान-हे याज्ञवल्क्य ! सम्पूर्ण जगत में आत्मबुद्धि ही हमारी श्रेष्ठता का कारण है । इसलिए समस्त जगत को पुरुषभाव से रहित मानती हूँ । एक अपने को ही पुरुष मानती हूँ । क्योंकि जगत में जितने स्त्री, पुरुष और नपुंसक हैं, उन सभी को मैं आत्म रूप से दर्शन करती हूँ । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जिसको सर्वत्र व्यापक आत्मा का ज्ञान है, वही पुरुष है, और जिसको व्यापक अद्वितीय आत्मा का ज्ञान नहीं हुआ, ऐसे अज्ञानी जीव नपुंसक हैं, अथवा स्त्रियाँ हैं । अब अज्ञानी जीवों में नपुंसकता दिखाते हैं । हे याज्ञवल्क्य ! शक्तिहीन को लोक में नपुंसक कहा जाता है । इस प्रकार नपुंसक लक्षण अज्ञानी जीवों में ही घटित होता है . क्योंकि यह अज्ञानी जीव अत्यन्त समीप हृदय देश में स्थित जो आनन्दस्वरूप स्वप्रकाश आत्मा है, उसको जानने में भी समर्थ नहीं होते । इसलिए ये सम्पूर्ण अज्ञानी जीव नपुंसक हैं । अब अज्ञानी जीवों में स्त्रीपना (स्त्रीत्व) दिखाते हैं। हे याज्ञवल्क्य ! पीनस्तनों वाली मैं गार्गी स्त्री नहीं हूँ, किन्तु जिन पुरुषों को आनन्दस्वरूप, अद्वितीय आत्मा का परिज्ञान नहीं हुआ वे अज्ञानी पुरुष ही स्त्री हैं । क्योंकि जैसे लोक प्रसिद्ध स्त्रियों का अपने से भिन्न पति होता है और उस पति के सर्वदा स्त्री आधीन रहती है । कदाचित् भी स्त्री स्वतन्त्र होती नहीं । वैसे अज्ञानी जीवों के भी अपने से भिन्न पति हैं, सदैव अज्ञानी जीव रूपी स्त्री उन पतियों के आधीन रहती है । इसलिए अज्ञानी जीव ही स्त्री हैं । हे याज्ञवल्क्य ! उन स्त्रियों में भी यह अज्ञानी जीव वारांगना स्त्री के समान है । क्योंकि जैसे वारांगना स्त्री को बहुत पुरुष भोगते हैं, वैसे इस अज्ञानी जीव रूपी स्त्री को भी काम, क्रोध, लोभ मोहादिक अनेक पति भोगते हैं । इसलिए यह समस्त अज्ञानी जीव वारांगना स्त्री के समान हैं । और मेरे में काम क्रोधादिक हैं नहीं, इस हेतु से मैं ही पुरुष हूँ । हे याज्ञवल्क्य ! जैसे लोक प्रसिद्ध स्त्री पुरुष के सम्बन्ध से गर्भधारण करती है, वैसे ये अज्ञानी जीव ही कालरूपी पुरुष के सम्बन्ध से सप्तम धातु वीर्य रूप गर्भ को धारण करते हैं, इस कारण से ये अज्ञानी जीव ही स्त्री हैं ।

अब कामादिक विकारों का अभाव अपने में दिखाते हैं हे याज्ञवल्क्य ! मैं गार्गी श्रेष्ठ यौवनावस्था में स्थित हूँ, तथा सम्पूर्ण युवा पुरुषों के मध्य में स्थित हूँ, तथापि मैं किञ्चित् मात्र भी कामादिक विकारों को नहीं प्राप्त होती और हे याज्ञवल्क्य ! जैसे एकान्त देश में स्त्री नग्न होती है वैसे मैं सभा के मध्य नग्न स्थित हूँ । और ये सम्पूर्ण ब्राह्मण कामादिक विकारों के भय से युक्त हैं, इसलिए मेरी ओर देखते

भी नहीं मेरा देहाभिमान निवृत्त हो चुका है, अतः इन सम्पूर्ण ब्राह्मणों को नेत्रों से देखती हूँ और हाथों से स्पर्श करती हूँ। तथापि मुझमें किञ्चित् मात्र भी कामादिक विकार उत्पन्न नहीं होते। इसलिए मैं स्त्री नहीं, किन्तु अज्ञानी जीव ही स्त्री हैं।

शंका . हे गार्गी! शास्त्र दृष्टि से यद्यपि तेरे में स्त्रीपना नहीं है, तथापि लोक दृष्टि से तेरे में स्त्रीपना (स्त्रीत्व) विद्यमान है।

समाधान :-हे याज्ञवल्क्य! लोक दृष्टि से भी स्त्री शब्द का अर्थ जिसमें घटता है, वह स्त्री है। और मेरे में स्त्री शब्द का अर्थ घटित नहीं होता है इसलिए मैं किस प्रकार स्त्री हो सकती हूँ? किन्तु मैं स्त्री नहीं।

अब व्याकरण की रीति से 'स्त्री' शब्द का अर्थ दिखाते हैं। हे याज्ञवल्क्य! इस प्रकार के शब्दों का समूह जिस प्राणी में होता है, उस प्राणी को बुद्धिमान पुरुष स्त्री कहते हैं। वे शब्द ये हैं-मैं समीचीन वधू हूँ और मैं यौवन अवस्था युक्त हूँ। मैं सुन्दर स्तनों वाली हूँ। इस लोक में मेरे समान कोई स्त्री सुन्दर नहीं। ये पति मेरा है। ये मेरे पुत्र हैं। ये मेरी पुत्रियाँ हैं। ये धन तथा अन्न मेरे घर में है। मैं वंध्या हूँ और बहुत कुटुम्ब वाली हूँ, इत्यादिक 'अहं' 'मम' अभिमान से उत्पन्न जो नाना प्रकार के शब्द हैं, उन शब्दों का समूह जिन जिन अज्ञानी जीवों में विद्यमान है, वे अज्ञानी जीव ही इस लोक में स्त्रियाँ हैं। और हे याज्ञवल्क्य! जो प्राणी आनन्द स्वरूप आत्मा के ज्ञान से युक्त हैं उन प्राणियों को श्रुति 'पुरुष' कहती है। वे आत्मज्ञानयुक्त प्राणी शरीर से स्त्री हों पुरुष हों अथवा नपुंसक हों। इसमें किञ्चित् मात्र भी ज्ञानी की हानि नहीं। सर्वथा आत्मज्ञानवान पुरुष हैं।

(पूज्य श्री स्वामी चिद्घनानन्द जी द्वारा अनुवादित)

इस प्रकार श्री गार्गी ने अपना परिचय दिया। तत्पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्मवादिनी गार्गी का आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर हुआ। उस प्रश्नोत्तर के पश्चात् विद्वत् सभा को सम्बोधित करते हुए कहा—

सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचक्नव्युपरराम।" (बृहदारण्यकोपनिषद् ३/८/१२)

अर्थ : उस गार्गी ने कहा, पूज्य ब्राह्मणगण! आप लोग इसी को बहुत मानें कि इन याज्ञवल्क्य जी से आपको नमस्कार द्वारा ही छुटकारा मिल जाये, आप में से कोई भी कभी इन्हें ब्रह्मविषयक वाद में जीतने वाला नहीं है। तदनन्तर वाचक्नु की पुत्री गार्गी चुप हो गयी।

इस निर्णय को सुनकर शाकल्य को, जो कि याज्ञवल्क्य के प्रति अच्छी भावना नहीं रखता था, अपार कष्ट हुआ। महर्षि याज्ञवल्क्य की प्रशंसा करने वाली

ब्रह्मवादिनी गार्गी के प्रति भी आक्रोशित होकर बहुत से अयोग्य शब्दों द्वारा उनकी अवहेलना की। उसने भी सर्व प्रथम गार्गी की ओर संकेत करते हुए जो कहा–

इयं कुमारी युवतिर्ब्राह्मणानां गृहाद् बहि।

निर्गता ——————————————————॥४४७॥

(आत्मपुराण ५/४४७)

यह (गार्गी) कुमारी, युवती ब्राह्मणों के घर से बाहर निकली हुई

इमां नग्नाम् – इस नग्ना को। (आत्मपुराण ५/४४८)

इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध है कि गार्गी बालब्रह्मचारिणी थीं और सदैव दिगम्बर अवधूत वेश में रहती थीं। वहीं पर शाकल्य के लिए जो संकेत किया गया। यथा–

इत्यादि कालपाशेन, मोहितः स द्विजोत्तमः।

अवज्ञाय हितां गार्गीं, सर्वदा ब्रह्मचारिणीम् ॥ (आत्मपुराण ५/४६८)

इस प्रकार कालपाश से मोहित हुआ उस द्विजोत्तम शाकल्य ने सर्वदा ब्रह्मचर्यधर्म में स्थित उस गार्गी की अनेक प्रकार के दुर्वचनों से अवज्ञा की। 'इयं कुमारीयुवतिः' 'गार्गीसर्वदाब्रह्मचारिणीम्' उपरोक्त श्लोकांशों से क्या सिद्ध हो रहा है? विवाहिता या अविवाहिता? श्री स्वामी जी महाराज! उपरोक्त श्लोक के चतुर्थ चरण को ध्यान से देखें–"गार्गी सर्वदा ब्रह्मचारिणीम्"। इतने पर भी गार्गी को विवाहिता घोषित करना, साहस मात्र हीं है। अन्य प्रमाण भी दृष्टव्य है :–

"इसके अतिरिक्त गार्गी जैसी विदुषी महिलाएं भी भारत के पुण्यक्षेत्र में प्रादूर्भूत हुई थीं, जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर शास्त्रों के पठन-पाठन और ब्रह्मानुभव में जीवन व्यतीत कर दिया।"

(हिन्दू संस्कृति अंक–गीता प्रेस गोरखपुर पृ०सं० ६२५)

"गार्गी परमविदुषी थीं, हमारे देश की एक महामूल्यवान रत्न थीं। वे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं।" (संत अक–गीता प्रेस गोरखपुर–पृ०सं० ३४२ का०नं०२)

"गार्गी के प्रश्नों को पढ़कर उनके गम्भीर अध्ययन का पता लगता है, इतने पर भी उनके मन में अपने पक्ष को अनुचित रूप से सिद्ध करने का दुराग्रह नहीं था। वे विद्वतापूर्ण उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो गयीं, और दूसरे की विद्वता की उन्होने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। गार्गी भारत की स्त्रियों में रत्न थीं। आज भी उनकी जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियों पर इस देश को गर्व है।

(नारी अंक–गीता प्रेस गोरखपुर–पृष्ठ सं० ३६०)

श्री स्वामी जी महाराज यह भी बताने की कृपा करें कि यह 'आत्मपुराण' भारतीय साहित्य एवं वर्णाश्रम–व्यवस्था में पूर्ण आस्थावान महापुरुष के द्वारा प्रणीत है या किसी विधर्मी के द्वारा? इसे आप भारतीय साहित्य का ग्रन्थ मानते हैं या नहीं? गीता प्रेस गोरखपुर के 'कल्याण' को आप जिसमें कि विभिन्न भारतीय

संप्रदायों के धर्माचार्यों सहित अन्यान्य विद्वानों के सत्शास्त्रानुकूल लेख रहते हैं, भारतीय साहित्य के अन्तर्गत मानते हैं या नहीं ?

"जनक राजा की हुक्म रानी में,
उन विदेहों की राजधानी में,
नंगी फिरती थी गार्गी लड़की
नूर चितवन में था जलाल भरी ।"

(श्री स्वामी रामतीर्थ कृत 'रामवर्षा' भाग २ पृ० स० १३९, शीर्षक 'गार्गी')

इस प्रकार वह बालब्रह्मचारिणी गार्गी अवधूतशिरोमणि—शुकदेव जी की भाँति अलक्ष्य लिङ्ग होकर विचरतीं थीं। यथा श्री शुकदेव जी—

तत्राभवद् भगवान्व्यासपुत्रो, यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो, वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥

(श्रीमद्भागवतम् १/१९/२५)

अर्थ—तत्र तेषु याग, योग तपोदानादिभिर्विवदमानेषुसत्सु यदृच्छया गां पर्यटन्व्यासपुत्रस्तत्राभवत्प्राप्तः । न लक्ष्यमाश्रमादि लिङ्गं यस्य। अवधूतऽवज्ञया जनैस्त्यक्त्वो यस्तस्येव वेषो यस्य सः ।

(श्रीधर स्वामिपादः)

इस प्रकार उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि गार्गी बालब्रह्मचारिणी थीं और अहर्निश ब्रह्मसच्चिदानन्द का अभिन्न चिन्तन करती हुई अवधूतवेश में रहती थीं। अगर हो सके तो अपनी ही चुनौती को अपने पक्ष में स्मरण करके श्री गार्गी के पति आदि का परिचय देते हुए शास्त्र विधि से उन्हें बालब्रह्मचारिणी गार्गी को) विवाहिता सिद्ध करें, अति कृपा होगी ।

जहाँ तक श्री स्वामी जी ने कहा "विवाह तो कुतिया-कुत्ते, गधी-गधे नहीं करते हैं," यह स्पष्ट अशिष्ट भाषा एव दूषित विचार हैं। जिस पद पर आप आसीन हैं, उस स्थान से इस प्रकार की भाषा निर्विवादरूपेण अशोभनीय है, और यह सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भी ठीक नहीं है, क्योंकि हमारे इस पवित्र तपोभूमि भारतवर्ष में अनेक स्त्री पुरुष ऐसे हुए हैं और आज भी हैं, जिन्होंने विवाह नहीं किया । यथा—

सर्वप्रथम सनकादि ऋषि, श्री शुकदेव जी भीष्मपितामह, भगवत्पाद भाष्यकार जगद्गुरू भगवान शंकराचार्य, सर्वसमर्थ गुरू श्री रामदास, श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य विश्वविजयी श्री स्वामी विवेकानन्द, आर्य समाज के संस्थापक श्री दयानन्द सरस्वती, बालब्रह्मचारी श्रीमत् स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज अवधूत चित्रकूट, देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक श्री केशवराव जी हेडगेवार आदि एवं नारियों में सुलभा, गार्गी, वेदवती, शबरी, सुवर्ता, स्वयप्रभा, संघमित्रा, मुक्ताबाई आदि अनेक विभूतियाँ हुई हैं, जिन्होंने विवाह नहीं किया ।

वर्तमान समय में भी भगवद्भक्त देशभक्त आध्यात्मिक स्त्री पुरुष हैं जिन्होंने विवाह नहीं किया है–राजनीतिक्षेत्र में पं० अटलविहारी सदृश एवं राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो अविवाहित रहकर राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में सम्माननीय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, श्री स्वामी पथिक जी महाराज, विश्वविख्यात श्री महेश योगी आदि स्त्रियों में सम्माननीया श्री गीता भारती जी एवं श्री नेमा देवी मैनपुरी आदि अनेक स्त्रीं पुरुष हैं।

श्री स्वामी जी महाराज ने अविवाहितों का कितना सुन्दर चमत्कारपूर्ण लक्षण बनाया जिसके अन्तर्गत सभी महापुरुष आ जाते हैं। वाह्रे परिष्कृत लक्षण की विशिष्टता जो कि अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असंम्भवदोष त्रय शून्य है! ऐसा लक्षण भूतकाल में तो किसी ने बनाने का साहस किया नहीं वर्तमानकाल में अभूतपूर्व अभाव की पूर्ति श्री स्वामी जी महाराज स्वयं कर रहे हैं। श्री स्वामी जी! इन प्रश्नों के कारणों को समझकर यदि शिष्टाचार पूर्वक समाधानात्मक पद्धति से किसी को समझाया जाय, तो सुनने वालों को भी शान्ति मिलेगी और आगामी पीढ़ी के लिए एक अनुकरणीय आदर्श रहेगा।

एक और अभद्र उत्तर

"गार्गी विवाहिता थी, इस बात को जब श्री स्वामी जी ने विशेष अधिकार एवं आग्रहपूवक कहा तब उनमे मेरे द्वारा प्रश्न किया गया–

"अगर गार्गी ने विवाह किया था, तो उसके पति का नाम आप बतावें ?" स्वामी जी का उत्तर "क्यों? क्या जरूरत है? आपको पता है कि आपकी परदादी का क्या नाम है? आपकी परदादी का नाम तो आपको याद नहीं है और गार्गी के पति का नाम पूँछते हैं।" इस पद्धति से श्री स्वामी जी महाराज ने उग्रतापूर्वक अपने विशाल अध्ययन एवं सन्त स्वभाव का परिचय देते हुए समाधान किया। उक्त समाधान कहाँ तक प्रश्न के अनुरूप है. देश विदेश के विद्वान इस पर स्वयं विचार करें। मैं क्या इसकी समीक्षा करूँ? इस सन्दर्भ में श्री स्वामी जी ने आगे कहा–

"ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं, जिनके पति का नाम नहीं, उनके पति के नाम थे। शाण्डिली के ही पति का नाम नहीं। शाण्डिली के भी पति का नाम नहीं है। किन्तु शाण्डिली पतिव्रता थी और विवाहिता थी।"

जैसा कि श्री स्वामी जी ने कहा कि शाण्डिली के ही पति का नाम नहीं है। यहाँ पर भी श्री स्वामी जी ने अपने अध्ययन की दुर्बलता छिपाने के लिए यही कह दिया कि शाण्डिली के भी पति का नाम नहीं है, जबकि शाण्डिली के पति का नाम और परिचय छोटी–२ सामान्य पुस्तकों में भी लिखा है। इसके अतिरिक्त कल्याण विशेषांक में भी द्रष्टव्य है–

"प्रतिष्ठानपुर में एक कौशिक नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था, वह पूर्व जन्म में किए हुए पापों के कारण कोढ़ी हो गया था, उसकी पत्नी का नाम शैब्या था, किन्तु 'शाण्डिल्य' गोत्र में उत्पन्न होने के कारण उसे लोग 'शाण्डिली' ही कहा करते थे। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी।"

(नारी अंक—गीताप्रेस गोरखपुर पृ० सं० ३८२, कालम नं० १)

तत्पश्चात् गार्गी के पति का नाम जब श्री स्वामी जी न बता सके, तब उनसे पुनः किसी प्रकार के अन्य प्रमाण सम्बन्धी प्रश्न किया गया। यथा—

'गार्गी ने पाणिग्रहण किया, इसमें क्या प्रमाण है ?

इस पर श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया-

गार्गी ने पाणिग्रहण किया इसमें यही प्रमाण है कि स्त्री को विवाह किए बिना नहीं रहना चाहिए। गार्गी धर्मशास्त्र को जानने वाली थी, इस लिए विवाह स्वाभाविक है, इसमें प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। धर्म शास्त्र के नियम के अनुसार गार्गी को विवाह करना ही चाहिए। उसने विवाह किया, विवाह नहीं करती तो याज्ञवल्क्यादि उससे बात तक नही करते। कहते तुम अपवित्र हो, तुमसे बात नहीं करते, धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण करती हो। यह सब प्रमाण हैं, उसके विवाह करने के।"

श्री स्वामी जी महाराज ने जिस उपरोक्त पद्धति से गार्गी को विवाहिता सिद्ध करने का प्रयास किया है, यह पूर्णरूपेण विद्वत् परम्परा की विचारधारा के विरुद्ध है। इसमें न कोई तर्क है, न कोई प्रमाण है और न कोई अनुभव है; केवल अनर्गल दुराग्रह मात्र है। इस प्रकार से वितण्डावाद की स्वच्छन्द शैली का आश्रय लेकर के समाज का कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति के ऊपर मन माना आरोप लगा सकता है। इत्यलम्।

जैसा कि स्वामी जी महाराज ने कहा, "धर्मशास्त्र के नियम के अनुसार गार्गी को विवाह करना ही चाहिए।" उसी प्रकार धर्मशास्त्र के नियम के ही अनुसार गार्गी को विवाह नही करना चाहिए, क्योंकि धर्मशास्त्र की यह आज्ञा है-

कामममरणत्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु, गुणहीनाय कर्हिचित्॥ (मनुस्मृति ९/८९)

अर्थ-ऋतुमती भी कन्या जीवनपर्यन्त पिता के गृह में ही रह जाय किन्तु इसे गुणहीन वर के लिए कदापि न देवे।

अब प्रश्न यह है कि कन्या के योग्य वर का मापदण्ड क्या है ? लोक में भी ऐसा देखा जाता है कि अगर कन्या पी० एच० डी० डी० लिट० हो तो उसी के योग्य पढ़ा लिखा बुद्धिमान चतुर वर खोजा जाता है। यह नहीं कि उसको किसी अशिक्षित अयोग्य व्यक्ति के साथ जोड़ दिया जाये। ऐसे ही विपरीत दिशा

में अगर कोई 'गोबर गनेशा' कन्या है, तो उसके भी अभिभावक उसी के लगभग अनुरूप वर खोजते हैं । अतः कन्या के अनुरूप ही वर होना चाहिए । यथा–

"जो घर बर कुल होइ अनूपा । करिय विवाह सुता अनुरूपा ।।
न तु कन्या वर रहउ कुँवारी ।.............................. ।।"

(श्री रामचरित मानस—१/७१/३–४)

अब प्रश्न यह है कि गार्गी के अनुरूप ही पति हो तो गार्गी का विवाह हो सकता है, परन्तु गार्गी के समान त्याग, तपस्या, विद्वता और ब्राह्मी स्थिति में जैसा कि गार्गी के प्रसंग में पूर्व वर्णन किया जा चुका है, अगर कोई होगा, तो वह शुकदेव आदि की भाँति विवाह करेगा नहीं और जो विवाह करेगा वह गार्गी के योग्य (अनुरूप) होगा नही । अतः गार्गी आजीवन अविवाहिता रही सुलभावत् । इसके अतिरिक्त पुन श्री स्वामी जी के सन्तोष के लिए यथा–

त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत, कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ।। (मनुस्मृति ९/९०)

अर्थ-कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे (इसके बाद योग्यतर पति नहीं मिलने पर) समान योग्यता वाले भी पति को स्वयं वरण कर ले ।

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद् यदि स्वयम् ।
नैन: किञ्चिदवाप्नोति, न च यं साधिगच्छति ।। (मनुस्मृति ९/९१)

अर्थ वर के लिए नहीं दान करने पर जो अपने समान योग्यता वाले पति का स्वयं वरण कर लेती है तो वह कन्या तथा पति थोड़ा (किञ्चित्) दोष भागी नहीं होते हैं ।

. गार्गी के अनुरूप लौकिक वर न मिलने पर उपरोक्त नियम ९/९० के अनुसार उन्होंने [गार्गी] अपने अनुरूप स्वयं ही वर को खोजा । यथा गार्गी अपने को तीन शरीर, पञ्चकोश, तीन अवस्था आदिक समस्त अविद्या प्रपञ्च से भिन्न अनुभव करतीं थीं । इन गुणधर्मों वाला तत्सम एक ब्रह्म सच्चिदानन्द ही है । अतः गार्गी ने उसी अलौकिक वर को वरण किया । इस प्रकार धर्मशास्त्र के नियम ९/९१ के अनुसार वह किञ्चित् मात्र दोषभागिनी नहीं रहीं । मैं आशा करता हूँ, इस उत्तर से गार्गी को विवाहिता सिद्ध करने वाला श्री स्वामी जी का दुराग्रह शांत हो जायेगा और हमको भी यह इष्ट है ।

"एक और हास्यास्पद् बात"

श्री स्वामी जी ने एक हास्यास्पद् वाक्य कहा कि–"गार्गी विवाह नही करती तो याज्ञवल्क्यादि उससे बात तक नहीं करते, कहते कि तुम अपवित्र हो, तुमसे बात नहीं करते ।"

यह भी कैसी स्वतन्त्र बुद्धि की विचित्र उपज है ? इससे भी यही सिद्ध होता है कि विवाह न करे वह अपवित्र है, कितनी सुन्दर एवं सहज पवित्र होने की औषधि [नुस्खा] बता रहे हैं श्री स्वामी जी महाराज। जीवन को पवित्र करने की कितनी सरल प्रक्रिया है, जिसको पवित्र होना हो, झट से विवाह कर लेवे, बस हो गया पवित्र। आध्यात्मिक जीवन की साधना को ध्यान में रखते हुए विचार कुशल व्यक्तियों का सकेत तो इस दिशा में दूसरी ही विधि से है, यथा सम्माननीय श्री जयदयाल गोयन्दका जी का सकेत:-

"असल में स्त्री पुरुषों के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य को पालन करना ही सर्वोत्तम है, परन्तु ऐसा होना असम्भव सा है। इसलिए शास्त्रकारों ने विवाह करने की आज्ञा दी है।"

(तत्त्वचिंतामणि भाग-३ 'नारीधर्म')

सत्य तो यही है, फिर भी श्री स्वामी जी के उपरोक्त कथनानुसार पुनः उनसे प्रश्न किया गया-

"यदि ऐसी बात है, तो सुलभा के साथ महाभारत में क्यों नहीं इस प्रकार प्रश्न किया गया ? (अर्थात् राजा जनक की विद्वत सभा में जब सुलभा उपस्थित हुईं, तो राजा जनक को उससे बात नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वह अविवाहिता थीं। और आपके अनुसार अपवित्र थी और फिर भी अध्यात्म चर्चा हुई। ऐसा क्यों ?")

इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में श्री स्वामी जी ने जो कहा:-

"बिल्कुल सुलभा के सामने यही प्रश्न है, महाभारत लाइये दिखा दूँ। जनक ने यही कहा सुलभा से कि पहले विवाह सुलभा से अपबित्र ही कहा, यहाँ तक कहा एक नहीं पाँच प्रकार के व्यभिचार का स्पष्ट आरोप। तू किस जाति की है ? विवाह किया या नहीं ? यह जनक के सुलभा के प्रति शब्द हैं।"

"सुलभा ने कहा, ये सब आपके दोष मेरे ऊपर नहीं लग सकते। मैं आपकी जाति की हूँ क्षत्रिया, और मैं विवाह करना चाहती थी, मुझे मेरे योग्य पति नहीं मिला। किसी ने मुझसे विवाह नहीं किया, इसलिए कुँवारी (कुमारी) रह गयी।"

(श्री स्वामी जी की स्वधारणा) "यह तो हम पहले ही कह चुके हैं, विश्व में अनादि काल से चले आ रहे हिन्दू जाति के इतिहास में एक स्त्री ऐसी थी, जिसके सम्बन्ध में यह प्रमाण मिलता है। वह स्वयं कहती है, क्यों नहीं किया, यह भी बतलाती है। क्यों नहीं किया यह भी बतलाती

है। यह नहीं कहा कि मैं तत्वज्ञानी हो गयी, इसलिए मैंने विवाह नहीं किया, या मुझे विवाह नहीं करना चाहिए या स्त्रियाँ संन्यास ले सकती हैं या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य।"

(श्री स्वामी जी के अनुसार सुलभा ने कहा) "मुझे आत्मज्ञान है तत्त्वज्ञान है और उसका प्रमाण यह कि चौबीस घण्टे मैं तेरे शरीर में रहूँगी और शरीर में रहकर के चौबीस घण्टे तक एक बूँद पानी नहीं पियूँगी और अन्न भी ग्रहण नहीं करूँगी। जो तत्त्वज्ञानी होता है उस को न भूख लगती है न प्यास लगती है। अगर मुझे भूख प्यास लगे तो समझ लेना कि मुझको तत्त्वज्ञान नहीं है। तू कैसा तत्त्वज्ञानी है?"

(उपरोक्त अवतरण श्री स्वामी जी के प्रवचन से शब्दश. ज्यों के त्यों उद्धृत किये गये हैं)

अब क्रमशः उत्तर

उपरोक्त श्री स्वामी जी का कथन कुछ तो बिल्कुल झूठ है. कुछ आंशिक झूठ है और कुछ भ्रमात्मक सत्य है। जहाँ तक सुलभा के विवाह का प्रश्न है, जनक ने ये नहीं पूछा, कि तुम किसकी पत्नी हो? और तुम्हारा कौन पति है? जनक की भावना यदि सुलभा के प्रति अपवित्रता की होती, तो सुलभा के आते ही जो उनका आदर और सम्मान किया, वह नहीं करना चाहिए था। यथा:–

राजा तस्याः परं दृष्ट्वा, सौकुमार्यं वपुस्तदा।
केयं कस्य कुतो वेति, बभूवागत विस्मयः॥
ततोऽस्यां स्वागतं कृत्वा, व्यादिश्य च वरासनम्।
पूजितां पादशौचेन, वरान्नेनाप्यतर्पयत्॥

(महाभारत शा. पर्व. अ. ३२०/१३–१४)

"उसके परम सुकुमार शरीर और सौंदर्य को देखकर राजा जनक आश्चर्य से चकित हो उठे और मन ही मन सोचने लगे, 'यह कौन है? किसकी है? अथवा कहाँ से आयी है? तदनन्तर उसका स्वागत करके, राजा ने उसे सुन्दर आसन समर्पित किया और पैर धुलाकर उसका यथोचित पूजन करने के पश्चात् उत्तमोत्तम अन्न देकर उसे तृप्त किया" सुलभा का त्रिदण्डयुक्त संन्यास देख करके यदि यह अशास्त्रीय होता तो श्रुति, स्मृति. वेद, पुराण शास्त्र के जानने वाले राजा जनक उपरोक्त विधि से सुलभा का सम्मान नही करते। यदि स्त्री का अविवाहित रहना एवं संन्यास लेना शास्त्र निषिद्ध होता, तो जनकादि यथोचित सम्मान नहीं करते। यथा· गोहत्या शास्त्र निषिद्ध है, समाज का कोई व्यक्ति किसी गोहत्यारे को तत् तत् चिन्हों सहित देखकर महापुरुषों की तरह उसका सम्मान नहीं करेगा

और न ही पादप्रक्षालनादि उपचार ही करेगा। परन्तु ऐसा न होकर जनक के वहाँ सुलभा का शास्त्रीय ढंग से पूर्ण सम्मान हुआ। जनक ने सुलभा से जो कुछ दुःखजनक अयोग्य, असंगत शब्द कहे उसका भी हेतु कुछ और ही था। वास्तव में वे [प्रश्न] उनके मौलिक नहीं थे। बात चीत के मध्य में जब ज्ञात हुआ कि सुलभा मेरी परीक्षा लेने आयी है। तब उन्होंने विभिन्न प्रकार के मिथ्या आरोप लगाये जिसका कि निराकरण सुलभा ने तो बाद में किया, पहले वयोवृद्ध धर्माधिकारी एव ज्ञानाधिकारी भीष्मपितामह ने कर दिया है। और जो श्री स्वामीजी ने कहा कि जनक ने सुलभा के ऊपर एक नहीं पाँच प्रकार के व्यभिचार का आरोप लगाया, यह असत्य है।

इस पर श्री महाराज जी से निवेदन है कि आरोपों की संख्या पाँच नहीं चार ही है। एक अपनी ओर से जोड़ा है। खैर! इसमें कोई बात नहीं, वृद्धावस्था में विस्मृति भी हो सकती है। श्री स्वामी जी ने 'व्यभिचार' शब्द विशेष का प्रयोग किया जो कि जनक जी के द्वारा प्रयुक्त नहीं है। श्री जनक जी ने 'व्यभिचार' शब्द का प्रयोग नहीं किया है, जो कि लौकिक भाषा के व्यवहारिक प्रयोग में अत्यधिक अपमान जनक और चरित्रहीनता का द्योतक है। श्री जनक द्वारा लगाये गये सभी मिथ्या आरोपों का उत्तर जो भीष्मपितामह ने दिया है, वही श्री महाराज जी के लिए भी उपयुक्त रहेगा यथा— भीष्म उवाचः—

इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः
प्रत्यादिष्टा नरेन्द्रेण, सुलभा न व्यकम्पत।

(महाभारत शा. पर्वं. अ. ३२०/२ लो. ७६)

श्री भीष्म जी कहते हैं:-हे युधिष्ठर! राजा जनक ने इन दुःखजनक अयोग्य और असंगत वचनों द्वारा उसका बड़ा तिरस्कार किया, तो भी सुलभा अपने मन में तनिक भी विचलित नहीं हुई।

ध्यान देवें, दुःखजनक'. 'अयोग्य' और 'असंगत' यह शब्द महाभारत के उसी प्रसंग में ही हैं जिनको कि सर्व शास्त्र विशारद महान् भगवद्भक्त बालब्रह्मचारी श्री भीष्म पितामह जी ने जनक के लिए कहा। अतः जनक के उन आरोपों को लेकर यदि सुलभा के जीवन को दोषयुक्त सिद्ध करने के लिए कुचेष्टा कोई भी करता है तो वह उसका अशास्त्रीय दुस्साहस मात्र होगा। उसके लिए उपरोक्त श्री भीष्म पितामह जी के शब्द ही पर्याप्त हैं। श्री स्वामी जी महाराज से भी निवेदन है कि उपरोक्त भीष्मोक्त श्लोक ध्यान से पढ़कर मनन कर लेवें। और दूसरी बात जो श्री स्वामी जी ने कही, "सुलभा ने कहा, "मैं विवाह करना चाहती थी, मुझे मेरे योग्य पति नहीं मिला"। किसी ने मुझसे विवाह नहीं किया, इसलिए कुमारी रह गयी।"

यह उपरोक्त द्वितीय वाक्य अक्षरशः झूठ है । महाभारत में सुलभा ने तीनों कालों में यह नहीं कहा है । यह वाक्य केवल राग द्वेष वश श्री स्वामी जी ने अपने विपक्ष को धुँधलाने के लिए तुरन्त गढ़कर तैयार किया । फिर भी "पाप वही जो सिर चढ़ि बोले." । श्री महाराज जी के श्री मुख से दो वाक्य निकले हैं, जिनका कि आपस में विरोधाभास है-

प्रथम वाक्यः—मैं विवाह करना चाहती थी, मेरे योग्य पति नहीं मिला ।

द्वितीय वाक्यः—किसी ने मुझसे विवाह नहीं किया, इसलिए कुमारी रह गयी ।

प्रथम वाक्य पति पक्ष में अयोग्यता का दर्शन कराता है और द्वितीय वाक्य सुलभा में अयोग्यता का दर्शन कराता है । द्वितीय वाक्य के अनुसार ऐसा संकेत मिलता है कि सुलभा का शरीर या जीवन कुछ दोषयुक्त था, यथा—लूली, लँगड़ी कानी, कुबड़ी आदि । इसलिए उससे किसी ने विवाह नहीं किया । और प्रथम वाक्य के अनुसार वह इतनी सुशिक्षिता एव योग्य थी कि उसके योग्य कोई वर ही नहीं मिला । अब इन दोनों वाक्यों का आपस में कैसे समन्वय होगा ? यह श्री स्वामी जी ही बतावें और देश के विद्वान श्री स्वामी जी के इन दोनों भ्रमात्मक वाक्यों पर जो कि आपस में एक दूसरे के विरोधी हैं, विचार करें और श्री स्वामी जी को प्रतिभा की सराहना करें ।

रही बात तृतीय गद्यांश की जिसमें कि श्री स्वामी जी ने सुलभा के माध्यम से स्त्रियों के संन्यास सम्बन्धी चर्चा की है. इसका उत्तर हम आगे 'स्त्री सन्यास विचार प्रकरण' नामक प्रकरण में देंगें । आगे श्री स्वामी जी महाराज ने जो सुलभा का नाम लेकर पुनः अपनी विद्या एवं ज्ञान के चातुर्य का परिचय दिया, वह भी विद्वत्तजगत में कम हास्यास्पद् नहीं रहेगा । श्री स्वामी जी महाराज ने अपने महान् दार्शनिक मस्तिष्क से एक पुनः बिना अण्डा का बच्चा तैयार किया । विशुद्ध असत्य स्थापित किया, जैसा कि उन्होंने कहा-

"सुलभा ने जनक से कहा, मुझे आत्मज्ञान है तत्त्वज्ञान है और उसका प्रमाण यह है कि २४ घण्टे मैं तेरे शरीर में रहूँगी और शरीर में रह कर के चौबीस घण्टे तक एक बूँद पानी नहीं पियूँगी और अन्न भी ग्रहण नहीं करूँगी । जो तत्त्वज्ञानी होता है उसे न भूख लगती है और न प्यास लगती है । अगर हमें भूख प्यास लगे तो समझ लेना कि मुझ को तत्त्वज्ञान नही है । तू कैसा तत्त्वज्ञानी है ?"

यह श्री स्वामी जी महाराज अक्षरशः झूठ बोले हैं । सुलभा ने इस प्रकार उस स्थल में (महाभारत में) तत्त्वज्ञानी का लक्षण स्वप्न तक में नहीं किया है । श्री स्वामी जी को पता नही कहाँ से कैसे और किस दृष्टि से वहाँ दिखायी

दिया ? अगर सुलभा ने वहाँ पर इस प्रकार से कहा है, तो श्री स्वामी जी महाराज कृपा करके दिखावें। इस कथन में न कोई दार्शनिक युक्ति है, न कोई श्रुति स्मृति का प्रमाण है और न किसी महापुरुष का अनुभव है, जो यह तत्त्वज्ञानी की परिभाषा की है। सुलभा इतनी महाज्ञानी, महायोगसिद्धा होकर इस प्रकार बेसिर पैर की अशास्त्रीय बात कैसे बोलती ? यह तो केवल श्री स्वामीजी महाराज की कला कौशल की उपज है।

"जो तत्त्वज्ञानी होता है, उसे न भूख लगती है, न प्यास लगती है।" इस सिद्धान्त में क्रिया कहीं हो रही है और फल कहीं हो रहा है। बुद्धि सहित चिदाभास का धर्म है तत्त्वज्ञान होना, प्राणों का धर्म है भूख और प्यास लगना। नियम तो यह है कि तत्त्वज्ञान से अज्ञान मिटता है लेकिन श्री स्वामी जी की फिलॉसिफी [दर्शन] में तत्त्वज्ञान से भूख और प्यास मिट जाती है। धन्य है ! इस विचित्र ज्ञान का परिणाम !

अगर इसी प्रकार शिक्षा दीक्षा की धारा बनती रही तो कोई कहेगा कि जो तत्त्वज्ञानी होता है उसे दिखायी नहीं देता है सुनायी नहीं देता है, उसकी प्राणन क्रिया [श्वांस–प्रश्वांस] बन्द हो जाती है और इसकी अन्तिम भूमिका में पहुँचा हुआ साधक यह घोषित करेगा कि जो ज्ञानी होता हैं, वह मर जाता है। श्री स्वामी जी से निवेदन है कि इस विषय में महाभारत के अतिरिक्त भी प्रमाण यदि शास्त्र के हों, तो अवश्य बताने की कृपा करें, साथ ही भगवान श्री नारायण हरि से लेकर आज तक अगर ब्रह्मविद्या की आचार्य परम्परा में तत्त्वज्ञानी का ऐसा लक्षण किसी ने किया हो तो अवश्य बतावें।

यह परिभाषा उसी प्रकार है जैसे कुछ दिन पहले की बात है, उत्तर प्रदेश में सीतापुर जनपद के एक गाँव में हम थे, वहाँ दो बालिकाओं को खेलते हुए देखा। एक लगभग पाँच वर्ष की थी और दूसरी चार वर्ष की थी। छोटी वाली ने बड़ी से जो खेल में बड़ी सुशिक्षिता का स्वाँग बनाये थी पूछा, 'दीदी ! हेलीकाप्टरु माने का होति है ?" बड़ी ने बड़े ही स्वाभिमान पूर्वक उत्तर दिया, हे··· ·············हेलीकाप्टरु नाई ई जनती हैं, अत्ती बड़ी होइ गईं हेलीकाप्टरु नाईं जनती हैं, अरे, जौनु मेहरुवा पाँयन मैंइहा रंगु लगौती हैं, वहै हेलीकाप्टरु है।" छोटी बालिका पूर्ण समाधानात्मक मुद्रा में बोली, "अच्छा——— अब जानि गयेन, हेलीकाप्टरु का होति है।"

क्या जो श्री स्वामी जी के द्वारा तत्त्वज्ञानी का लक्षण किया गया है इन बच्चियों के हेलीकाप्टरु से कहीं क्या कम है ? बेचारी, भोली भाली जनता का समाधान भी इन बच्चियों के समान हो जायेगा।

प्रस्थान त्रय एवं उस पर शांकरभाष्य तथा अन्यान्य वेदान्त के ग्रन्थों की तो बात दूर रही, अगर श्री स्वामी जी महाराज सामान्य हिन्दी शब्दकोशों को

ही देख लिये होते तो भी ऐसी भूल नहीं होती। भगवान आद्य शंकराचार्य ने अपने 'तत्त्वबोध' नामक लघु प्रकाश ग्रन्थ में जीवनमुक्त तत्त्ववेत्ता का कितना सरल और स्पष्ट लक्षण किया है। यथा:-

ननु जीवन्मुक्तः कः? यथा देहोऽहं, पुरुषोऽहं, ब्राह्मणोंऽहं, शूद्रोऽहमास्मीति दृढ़निश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणो न शूद्रो न पुरुषः किन्त्वसङ्गः सच्चिदानन्दरूपः स्वप्रकाशरूपः सर्वान्तर्यामी चिदाकाश-रूपोऽस्मीति दृढ़निश्चयरूपापरोक्षज्ञानवान जीवन्मुक्तः।

(तत्त्वबोध आद्य शंकराचार्य भगवान कृत)
पृ० सं० २४

अर्थ-जीवनमुक्त कौन है? जैसे मैं देह स्वरूप हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं शूद्र हूँ. इस प्रकार दृढ़ निश्चय है, वैसे ही मैं न ब्राह्मण हूँ, न शूद्र हूँ, न न पुरुष हूँ; बल्कि असंग सच्चिदानन्द स्वरूप, स्वप्रकाश स्वरूप, सर्वान्तर्यामी और चिदाकाश रूप हूँ। ऐसा दृढ़ निश्चय रूप अपरोक्षज्ञान वाला पुरुष जीवन्मुक्त है। और उसके विपरीत जो तत्त्वज्ञानी, जीवन्मुक्त की, जीव, ब्रह्म, ईश्वर, जगत, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञादि की शास्त्र विरुद्ध मनमानी कल्पना करता है, उसके लिए भगवान शंकराचार्य श्रीमद्‌भगवद् गीता के तेरहवें अध्याय के द्वितीय श्लोक का भाष्य करते हुए क्या लिखा है? बहुत ध्यान से देखने योग्य है-

आत्महा स्वयं मूढः अन्यान् च व्यामोहयति शास्त्रार्थं सम्प्रदाय रहितत्वात् श्रुतहानिम् अश्रुतकल्पनां च कुर्वन्। तस्माद् असंप्रदायवित् सर्वशास्त्रविद् अपि मूर्खवद् एव उपेक्षणीयः।

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता १३/२ का शांकरभाष्य)

तथा वह आत्म हत्यारा शास्त्र के अर्थ की सम्प्रदाय परम्परा से रहित होने के कारण श्रुतिविहित अर्थ का त्याग और वेद विरुद्ध अर्थ की कल्पना करके स्वयं मोहित हो रहा है और दूसरों को भी मोहित करता है। सुतरां जो शास्त्र की परम्परा को जानने वाला नहीं है, वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता भी हो, तो भी मूर्खों के समान उपेक्षणीय ही है; अब अन्त में उसी 'सुलभा जनक संवाद' स्थल में ही सन्यासनी सुलभा ने तत्त्ववेत्ता मुक्त का क्या लक्षण किया है? दिखाते हैं-

न वर्गस्था ब्रवीम्येतत् स्वपक्षपरपक्षयोः
मुक्तो व्यायच्छते यश्च, शान्तौ यश्च न शाम्याति

(महाभारत शा. प. अ. ३२०/१९०)

अर्थ-मैं स्वपक्ष और परपक्ष में से अपने पक्ष में स्थित हो पक्षपात पूर्वक यह बात नहीं कह रही हूँ। आपके हित को दृष्टि में रखकर बोलती हूँ। क्यों कि जो वाणी का व्यायाम नही करता और जो शान्त परब्रह्म में निमग्न रहता है, वही मुक्त है।

महातपस्विनी बालब्रह्मचारिणी सुलभा ने वहाँ पर स्पष्ट उपरोक्त प्रकार से जीवन्मुक्त का लक्षण कहा है, परन्तु श्री स्वामी जी महाराज इस प्रकार सुलभा का नाम लेकर पता नहीं झूठ क्यों बोले ? और उससे क्या लाभ होगा ? अब पूज्य श्री स्वामी जी महाराज अपनी वह प्रतिज्ञा यहाँ पर स्मरण करें जो कहा था अपने वक्तव्य में कि "धर्मशास्त्र के विरुद्ध बोले तो नरक में जायें।" अपनी इस प्रतिज्ञा के अनुसार यदि श्री स्वामी जी महाराज धर्म में सत्य में वेदों में सत्यनिष्ठा रखते हैं तो अपने द्वारा कहा हुआ उपरोक्त तत्त्वज्ञानी का लक्षण सुलभा ने कहा है-सिद्ध करें प्रमाणित करें अथवा जो धर्मशास्त्र का नाम लेकर असत्य बोले हैं, उसका शास्त्रोक्त प्रायश्चित् करे अन्यथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध बोलने के कारण उपरोक्त प्रतिज्ञानुसार क्या होगा ? कहाँ जायेंगे ? स्वयं सोच लेवें। सुलभा ने जो रात भर रुकने के लिए कहा, वह कैसे और क्या कहा ? पढ़ें-

यथा शून्ये पुरागारे, भिक्षुरेकां निशां वसेत् ।
तथाहं त्वच्छरीरेऽस्मिन्निमां वत्स्यामि शर्वरीम्
साहं मानप्रदानेन वागातिथ्येन चार्चिता ।
सुप्ता सुशरणं प्रीता, श्वो गमिष्यामि मैथिल ।

(महाभारत शा० प० अ० ३२०/ श्लो० १९१-१९२)

अर्थ-जैसे नगर के किसी सूने घर में संन्यासी एक रात निवास कर लेता है, इसी तरह आपके इस शरीर में मैं आज रात रहूँगी।

आपने मुझे बड़ा सम्मान दिया। अपनी वाणी रूप आतिथ्य के द्वारा मेरा भली भाँति सत्कार किया। मिथला नरेश ! अब मैं प्रसन्नता से आपके शरीर रूपी सुन्दर गृह में निवास करके कल सवेरे यहाँ से चली जाऊँगी। उस स्थल में निवास के लिए सुलभा ने इतना ही कहा है, "अन्न जल नही ग्रहण करूँगी" आदि कपोल कल्पित है। अन्त में भीष्म पितामह ने जो कहा, वह भी स्मरणीय हैं, यथा-

"इत्येतानि स वाक्यानि, हेतुमन्त्यर्थवान्ति च
श्रुत्वा नाधिजगौ राजा, किञ्चिदन्यदतः परम ।

(महाभारत शा. प. अ. ३२०/ श्लो. १९३)

अर्थ-श्री भीष्म जी कहते हैं, राजन ! सुलभा के ये युक्तियुक्त और सार्थक वचन सुनकर राजा जनक इसके बाद और कोई बात नहीं बोले।

हिन्दू इतिहास में बालब्रह्मचारिणी अविवाहिता तपस्विनी नारियों का दर्शन

अब पुनः श्री स्वामी जी महाराज अपनी उस चुनौती को स्मरण कर लें जिसको कि स्मरण रखना जरूरी है।

"जो अपने सच्चे पिता से पैदा हुआ हो, जिसने अपनी माँ का दूध पिया हो वह सिद्ध करे कि किसी स्त्री ने विवाह नही किया ?"

इसी को याद रखते हुए पवित्र हिन्दू इतिहास की उन वीर ललनाओं का दर्शन करा रहे हैं जिन्होंने विवाह नही किया। अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत को धारण कर के त्याग, तपस्यापूर्वक ब्रह्मचिन्तन करते हुए परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष को प्राप्त किया।

१–वेदवती कन्या

कुशध्वज की भार्या का नाम मालावती था, जो पतिव्रता एवं परमगुणवती थीं। बहुत दिन व्यतीत होने पर उसने समयानुसार एक कन्या उत्पन्न की। जो लक्ष्मी की अंशावतार स्वरूपा थी। उसको पूर्वजन्म से ही ज्ञान प्राप्त था। पूर्व जन्म की अनुस्मृति के कारण जन्म लेते ही उस कन्या ने वेद मन्त्रों का उच्चारण किया। यथा–

'कृत्वा वेदध्वनि स्पष्टमुत्तस्थो सूतिका गृहात्'

तथा तत्काल ही उठकर वह सूतिका गृह से बाहर निकल आयी। इसलिए विद्वान् पुरुष उसको वेदवती कहने लगे।

जातमात्रेण सुस्नाता, जगाम तपसे वनम्।
सर्वैर्निषद्ध यत्नेन, नारायण परायणा।

उत्पन्न होते ही उस कन्या ने स्नान किया और उसी क्षण तपस्या के विचार से तपस्या के लिए वन की ओर चल दी। यद्यपि उसको सभी ने रोका, परन्तु नारायण में निरत रहने वाली उस नवजात कन्या ने किसी की कुछ नही सुनी।

एक मन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी
अत्युग्रां च तपस्यां च, लीलया हि चकार सा ॥ ७ ॥
तथापि पुष्टा न क्लिष्टा, नव यौवन संयुता
सुश्राव सा च सहसा, सुवाचमशरीरिणम् ॥ ८ ॥

अर्थ–फलतः उस तपस्विनी कन्या ने एक मन्वन्तर तक पुष्कर क्षेत्र में कठोर तप किया, उसे तपस्या में कठिनाई नही जान पड़ी। स्वाभवतः अतिशय तपोनिष्ठ रहने पर भी उसका पार्थिव शरीर हृष्ट पुष्ट बना रहा। उसमें तनिक भी दुर्बलता नहीं आयी सहसा उसको एक दिन एक विचित्र एवं सुस्पष्ट आकाश वाणी सुनाई दी। हे सुन्दरि ! दूसरे जन्म में वे भगवान श्री हरि ही तुम्हारे पति होंगें, जिन की उपासना ब्रह्मादि देवता भी बड़ी कठिनता से कर पाते हैं।

इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपा।
हृदीव निर्जनस्थाने, पर्वते गन्धमादने ॥ १० ॥

हे मुने ! इस प्रकार की आकाशवाणी सुनने के बाद वेदवती नाम की वह अपूर्व कन्या गन्धमादन पर्वत पर गयी और वहाँ के निर्जन वन में पहले से भी अधिक तप प्रारम्भ कर दिया । ··————

इत्युक्त्वा सा च योगेन देह त्यागं चकार सा

देवी वेदवती ने इस प्रकार कह कर योग द्वारा अपने शरीर का परित्याग कर दिया ।

(श्रीमद् देवी भागवत स्कन्ध ९ /अध्याय १६——————)

इस वेदवतीं नामक तपस्विनी कन्या ने जन्म से मृत्यु पर्यन्त विवाह नहीं किया। यदि विवाह किया हो तो श्री स्वामी जी महाराज सिद्ध करें । अगर किसी महापुरुष ने 'कुतिया' 'गधी' आदि शब्दों से संबोधित किया हो तो यह भी बतावें। 'विवाह किये बिना कल्याण नहीं होगा' श्री स्वामी जी के ये भी शब्द हैं । बाल बालब्रह्मचारिणी वेदवती किस नरक में गयी ? कृपया बतायें। वेदवती तो किसी नरक में न जाकर दूसरे जन्म में साक्षात् भगवती सीता के रूप में अवतरित हुई तथा जगत्पति को पति रूप में प्राप्त करके "कहियत भिन्न न भिन्न" हुई ।

२— स्वयंप्रभा

अपनी चुनौती याद रखते हुए दूसरी एक महाविभूति 'स्वयंप्रभा' का दर्शन करें। महान् तपस्विनी बालब्रह्मचारिणी स्वयं प्रभा जो इसी जन्म में तपस्या करते करते मुक्त हुई ।

'श्री सीता खोज' के अवसर पर भयंकर वन में श्री हनुमान जी अपने सहयोगी वानरों सहित प्यास से पीड़ित होकर—

तृषार्ताः सलिलं तत्र न विन्दन हरिपुङ्गवाः

(यहां पर अप्रसांगिक एक ओर संकेत कर रहे हैं । श्री हनुमन्त लाल जी ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं, परन्तु 'तृषार्ताः' 'हरिपुङ्गवाः' ये बात ध्यान रखते हुए, तत्त्वज्ञानी को भूख प्यास नहीं लगती है, उससे मिलावें ।)

उस जंगल की एक विचित्र अलौकिक गुफा में प्रवेश किया । वहाँ अन्दर एक सुन्दर भवन था । वहीं पर मणिमय अलकारों से युक्त और दिव्य भक्ष्य भोज्यादि सामग्रियों से पूर्ण सर्वगुण सम्पन्न निर्जन भवन था । उनमें से एक दिव्य भवन में उन्होंने अति आश्चर्य चकित हो एक स्त्री को अकेली सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान देखा । वह सुन्दरी योगाभ्यास में तत्पर एक योगिनी थी, अपने तेज से वह उस स्थान को प्रकाशित कर रही थी । तथा शरीर पर चीर वस्त्र धारण किए उस समय ध्यान कर रही थी । उस महाभागा युवती को देखकर वानरों ने भय और प्रेम से प्रणाम किया ।- 'प्रणेमुस्तां महाभागां'

ध्यान देवें, यहाँ पर श्री हनुमन्त लाल तथा उनके सहयोगी वानरों में से कोई ने अशिष्ट शब्द नहीं प्रयोग किया । अपितु प्रेम से प्रणाम किया । उस योगिनी

तपस्विनी ने वानरों से परिचय प्राप्त किया । पुनः श्री हनुमान जी ने उससे पूछा हे शुभे ! आप यहां किस लिए रहती हैं ? और कौन हैं ? ये हमें बतायें। ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्री हनुमन्त लाल जी एक तपस्विनी स्त्री को देखकर संबोधन करते हैं– हे शुभे ! न तो कुतिया न गधी कहा और न यह ही पूछा कि यह नरक का रास्ता तुम्हें किसने बताया ? पुनः हनुमदादि भगवद्भक्त फलादि खाकर एवं जल पीकर प्रसन्नचित हो उस देवी के पास आकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये । तदनन्तर वह दिव्य दर्शना योगिनी श्री हनुमान जी से इस प्रकार कहने लगी–

देव्या समीपं गत्वा ते, बद्धाञ्जलिपुटाः स्थिता ।
तथा प्राह हनुमन्तं, योगिनी दिव्य दर्शना ॥५०॥

देखें श्री स्वामी जी महराज ! महापुरुषों का, शिष्ट व्यक्तियों का व्यवहार और शब्द कैसा है ?

व्यवहार :–'बद्धाञ्जलि पुटाः स्थिता" यह आदर्श ज्ञानियों के अग्रमण्य श्री हनुमान जी का एक भारतीय तपस्विनी महिला के प्रति है । अध्यात्म–रामायण के प्रवक्ता भगवान शंकर कौन सा शब्द प्रयोग करते हैं ? जरा ध्यान पूर्वक पढ़ने की कृपा करें– 'योगिनी दिव्य दर्शना' ।

'कुतिया', 'गधी' या नरकपथगामिनी नहीं कहा, जैसा कि आपने एक संत महिला से कहा था-"माई ! तुझे ये नरक में जाने का रास्ता किसने बताया ?" समाज का हर व्यक्ति समझ लेवे कि इस प्रकार के 'फूहर' भद्दे, अभद्र एवं अमांगलिक शब्दों अथवा वाक्यों का प्रयोग शिष्ट व्यक्तियों की बात ही क्या है ! सामान्य मनुष्य भी नहीं करता है जैसा कि महराज जी ने प्रयोग किया है ।

पुनः आगे चलें । वह अपना परिचय दे रही है । पूर्वकाल में विश्वकर्मा की हेमा नाम वाली एक 'दिव्य रूपिणी' पुत्री थी, उस सुन्दरी ने अपने नृत्य से श्री महादेव जी को प्रसन्न किया । प्रसन्न होकर श्री शंकर जी ने उसे यह विशाल और दिव्य नगर रहने के लिए दिया । यहां पर सुन्दर दांतों वाली सहस्रों वर्षों रही–

तस्या अहं सुखी, विष्णुतत्परा मोक्षकांक्षिणी ।
नाम्ना स्वयं प्रभा देव्या, गंधर्व तनया पुरा ॥५३॥

अर्थ :–मैं उसकी सखी दिव्य नामक गंधर्व की पुत्री हूं । मेरा नाम स्वयं-प्रभा है । मुझे मोक्ष की इच्छा है, अतः मैं सर्वदा विष्णु भगवान की उपासना में तत्पर रहती हूं । श्री स्वामी जी महाराज ! ध्यान देवें इन शब्दों पर–'विष्णु तत्परा मोक्षकांक्षिणी' । यह विष्णु तत्परा और मोक्षकांक्षिणी सदा तपस्विनी थी। इसको भी खींचातानी करके सिद्ध करना कि विवाहिता थी । कोई पूछे कैसे विवा-हिता थी ? तो आपके पास वह काल्पनिक अनुमान प्रमाण का महा अस्त्र है ही कि–

"पाणिग्रहण किया इसमें यही प्रमाण है कि स्त्री को बिना विवाह

किये नहीं रहना चाहिए। इसमें प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं।"

जैसा कि आपने कहा था यह आपके ही शब्द हैं। अब दुनिया के बुद्धि-जीवी विद्वान् विचार करें कि किसी का विवाह हो गया है, इसका निर्णय करने के लिए श्री स्वामी जी का यह वाक्य कितना युक्ति संगत तर्कपूर्ण एवं न्याय युक्त है! मैं कहता हूँ कि तपस्विनी स्वयंप्रभा के ही शब्दों पर ध्यान दिया जाय, उन्होंने जो कहा– "विष्णुतत्परा मोक्ष कांक्षिणी"

अगर विवाह किया था तो क्या इसने अपने पति को छोड़ दिया था? अगर इस प्रकार धर्म विरुद्ध आचरण करने वाली होती, तो क्या इसको श्री हनुमान जी सम्मान की दृष्टि से देखते या व्यवहार करते? तो आप फिर दूसरी कल्पना जगत में उड़ान ले सकते हैं कि वह विधवा थी। यह भी आप कह सकते हैं, कोई आपके लिए आश्चर्य नही! परन्तु मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जो कुछ भी कहें, कृपया, लिखित रूप में कहें। विचार सब पर किया जायेगा।

पुनः तपस्विनी स्वयंप्रभा कहती है, पूर्वकाल में जब वह [हेमा] ब्रह्मलोक जाने लगी, तब मुझसे उसने कहा कि तू सब प्रकार के प्राणियों से रहित इस स्थान में ही तपस्या कर। त्रेतायुग में साक्षात् अव्यय नारायण राजा दशरथ के यहाँ अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए वन में विचरेंगे। उनकी भार्या को खोजते हुए कुछ वानर तेरी गुफा में आयंगें। उनका भली प्रकार सत्कार कर के तू श्री रामचन्द्र जी की [उनके पास जाकर] प्रत्यनपूर्वक वन्दना और स्तुति करके भगवान विष्णु के नित्य धाम को चली जायेगी, जो योगियों को ही प्राप्त होने योग्य है, अतः अब तुरन्त ही भगवान राम का दर्शन करने के लिए जाना चाहती हूँ - तत्पश्चात् सभी वानरों ने आँख बन्द कर लिया और अपने को सिन्धु के किनारे पाया। और वह स्वयप्रभा तपस्विनी ने भी अपनी उस गुफा को छोड़ कर भगवान श्री राम के पास जाकर श्री लक्ष्मण सहित भगवान का दर्शन किया और प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। पुलकित तन होकर गद्‌गद्‌भाव में प्रभु की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना को सुनकर भगवान महान् प्रसन्न हुए। और अनन्य-भक्ता योगिनी से बोले-

"एवं स्तुता रघुश्रेष्ठः, प्रसन्नः प्रणताघहृत् ।
उवाच योगिनीं भक्तां, किं ते मनसि कांक्षितम् ।। ७८ ।।

अर्थ–उसके इस प्रकार स्तुति करने से प्रणतपापापहारी श्री रघुनाथ जी अति प्रसन्न हुए और उस अनन्य भक्ता योगिनी से बोले, "तेरी हार्दिक इच्छा क्या है?"

"सा प्राह राघवं भक्त्या, भक्ति ते भक्त वत्सल ।
यत्र कुत्रापि जाताया, निश्चलां देहि मे प्रभो ।। ७९ ।।
त्वद्‌भक्तेषु सदा सङ्गो, भूयान्मे प्राकृतेषु न ।
जिह्वा में राम रामेति, भक्त्या वदतु सर्वदा ।। १८ ।।

अर्थ—उसने अति भक्तिपूर्वक श्री रघुनाथ जी से कहा, हे भक्तवत्सल प्रभो ! मैं जहाँ कहीं जन्म लूँ, आप मुझे अविचल भक्ति दीजिए। प्रत्येक जन्म में मेरा सग आपके भक्तों से ही हो। संसारी लोगों से नही और मेरी जिह्वा सदा भक्ति पूर्वक 'राम-राम' ऐसा रटा करे।

यहाँ पर भी देखें कि उस महातपस्विनी ने वरदान में क्या माँगा ? प्रभु की अनन्य भक्ति माँगी। प्रत्येक समय जिह्वा 'राम-राम' कहती रहे। प्राकृत पुरुषों का संग कभी भी न हो। इतनी विचित्र इस ब्रह्मचारिणी वीतरागिणी; महातपस्विनी स्वयंप्रभा की आन्तरिक आकांक्षा है ! उसकी यह महानतम् आध्यात्मिक आन्तरस्थिति को क्या सामान्य प्राकृत, वहिर्मुख मनुष्य समझ सकता है ? कभी नही स्वप्न तक में नहीं। श्री स्वामी जी महाराज के सिद्धान्तानुसार एवं कथनानुसार तो उसे माँगना चाहिए था कि "हे प्रभो ! जहाँ जहाँ हमारा जन्म हो, वहाँ वहाँ शीघ्र ही हमारा विवाह हो और ऐहिक सुखों में, संसार के विषय भोगों में अनुरक्ति, भक्ति और आसक्ति हो तथा प्राकृत पुरुषों का अविभाज्य अनवरत संग हो।" परन्तु ऐसा नही माँगा। ठीक इसके विपरीत ही माँगा। जो श्री स्वामी जी को इष्ट नहीं है। पुनः आगे देखें—

श्री राम उवाचः—

> भवत्वेवं महाभागे, गच्छ त्वं बदरीवनम् ।
> तत्रैव मां स्मरन्ती, त्वं त्यक्त्वेदं भूतपञ्चकम् ।।
> मामेव परमात्मानमचिरात्प्रतिपद्यसे ।। ८३ ।।

श्री रामचन्द्र जी बोले—हे महाभागे ! ऐसा ही होगा। अब तू बद्रिका आश्रम को जा, वहाँ मेरा स्मरण करती हुई तू शीघ्र ही पाञ्चभौतिक शरीर छोड़कर मुझ परमात्मा को ही प्राप्त हो जायेगी।

तद्पश्चात्-"श्रुत्वा रघुत्तम वचोऽमृत सारकल्पं,
गत्वा तदैव बदरी तरु खण्डजुष्टम् ।
तीर्थं सदा रघुपतिं मनसा स्मरन्ती,
त्यक्त्वा कलेबरमवाप परं पदं सा ।। ८४ ।।

अर्थ—श्री रघुनाथ जी के अमृत के समान मधुर वचन सुनकर 'स्वयंप्रभा' उसी समय पुण्य क्षेत्र बद्रिकाश्रम में चली गयी। जहाँ बहुत से बेरी के वृक्ष लगे हुए हैं, वहाँ अपने अन्तः करण में श्री रघुनाथ जी का स्मरण करती हुई वह अन्त में शरीर पात होने पर परम पद को प्राप्त हुई। (देखो अध्यात्म रामायण कि. का. सर्ग ६ पूरा)

श्री स्वामी जी महाराज ! अगर आपने श्री रामचरित मानस का ही ध्यान से अध्ययन किया होता, तो उसी में पढ़ लिये होते—

"दीख जाय उपवन वर, सर बिगसित बहुकंज ।
मन्दिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप पुञ्ज ।
दूरि ते ताहि सबन सिर नावा । पूँछे निज वृतांत सुनावा ।
तेहि तब कहा करहु जलपाना । खाहु सुरस सुन्दर फल नाना ।
मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये । तासु निकट पुनि सब चलि आये ।
तेहि सब आपनि कथा सुनाई । मैं अब जाब जहाँ रघुराई ।
मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू । पैहउ सीतहि जनि पछिताहू ।
नयन मूँदि पुनि देखहिं वीरा । ठाढें सकल सिन्धु के तीरा ।
सो पुनि गयी जहाँ रघुनाथा । जाइ कमल पदनायेसि माथा ।
नाना भाँति विनय तेहि कीन्हीं । अनपायिनी भक्ति प्रभु दीन्हीं ।
बदरीबन कहुँ सो गयी, प्रभु अग्या धरि सीस ।
उरधरि रामचरन जुग, जे बंदत अज ईस ।

(रामचरित मानस–कि० का०–दोहा २४ से २५ दोहा तक)

इसी महा तपस्विनी के लिए श्री बाल्मीकि जी ने कैसे शब्दों का प्रयोग करके परिचय दिया है । जरा देखें—

"चीरकृष्ण जिनाम्बराम्" (बा. रा. कि. का.–५०/३९)
"तापसीं नियताहारां ज्वलन्तीमिव तेजसा" (बा.रा.कि: का. ५०/४०)

शूर वीर वानरों ने थोड़ी ही दूर पर किसी स्त्री को देखा जो बल्कल काला मृगचर्म पहनकर नियमित आहार करती हुई तपस्या में संलग्न थी । वानरों ने उसे बड़े ध्यान से देखा । आश्चर्य चकित होकर सब ओर खड़े रहे, उस समय श्री हनुमान जी ने उससे पूछा, देवि ! तुम कौन हो ? यह किसकी गुफा है ?

ततो हनूमान गिरिसंनिकाशः
कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम् ।
पप्रच्छ का त्वं भवनं विलं च,
रत्नानि चेमानि बदस्व कस्य ।

(बा. रा. कि. का. ५०/३९)

अर्थ-पर्वत के समान विशालकाय श्री हनुमान जी ने हाथ जोड़कर उस वृद्धा तपस्विनी से पूछने लगे कि तुम कौन हो ? और यह गुफा, यह भवन, यह समस्त रत्न किसके हैं ? यह हमें बताओ ।

देखिए शिष्टाचार ! अनुभव करें महान् व्यक्तियों का आदर्श व्यवहार और बर्ताव तथा बातचीत का ढंग ! स्त्रियों का तप करना, बल्कल धारण करना, काला मृगचर्म धारण करना, यदि अशास्त्रीय होता, तो ज्ञानियों में अग्रगण्य श्री

हनुमान् जी 'कृताञ्जलिस्तामभिवाद्य वृद्धाम्' कितने शिष्ट ढंग से उस वृद्धा तपस्विनी नारी को सम्मान पूर्ण शब्दों से संबोधन करते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करके पूंछते हैं: –

इत्युक्त्वा हनुमांस्तत्र, चीरकृष्णाजिनाम्बराम्
अब्रवीतां महाभागां तापसीं, धर्मचारिणीम्
(बा०रा०कि०का० ५१/१)

इस तरह से पूछकर श्री हनुमान जी चीर एवं कृष्णमृगचर्म को धारण करने वाली उस धर्म परायण महाभागा तपस्विनी से वहाँ पुन: बोले। ध्यान देवें शब्दों पर–

'महाभागां', 'तापसीं', धर्मचारिणीम्

० ० ०

एवमुक्ता हनुमता तापसी धर्मचारिणी ।
प्रत्युवाच हनूमन्त, सर्वभूत हिते रता: । (बा०रा० ४/५१/९-१०)

श्री हनुमान जी के इस प्रकार पूछने पर समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाली उस धर्म परायण तापसी ने उत्तर दिया। अब ध्यान दो पुन: श्री बाल्मीकि जी के सम्बोधन– महाभागा', 'तापसी', 'धर्मचारिणी' 'सर्वभूतहितेरता:' इससे बढ़कर आध्यात्मिक पथ में नारी को और क्या सम्मान होगा ? यहाँ पर श्री बाल्मीकि जी ने स्वयंप्रभा के लिए किन्हीं अशोभनीय अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं किया। इस प्रसग को पढ़कर हम भी थोड़ा बोलना सीख लें तो अति सुन्दर रहेगा।

३- बालब्रह्मचारिणी सिद्धा ब्राह्मणी

महात्मा शाण्डिल्य की पुत्री जिसने कौमार्यावस्था से ही अखण्ड ब्रह्मचर्य पूर्वक महान् तप किया। यथा–

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा, कौमार ब्रह्म चारिणी ।
योग युक्ता दिवं याता, तप: सिद्धा तपस्विनी ।

अर्थ :–यहीं पर कुमार अवस्था से ब्रह्मचर्यव्रतधारण करने वाली 'ब्राह्मणी" सिद्ध बन गयी, जिस तपस्विनी ने यहाँ घर में ही तप करके योगासिद्धि पायी और फिर स्वर्ग चली गयी।

बभूव श्रीमती राजन्, शाण्डिल्यस्य महात्मन: ।
सुता धृतव्रता साध्वी, नियता ब्रह्मचारिणी ।

हे राजन ! महात्मा शाण्डिल्य की वह कन्या थी वह साध्वी कन्या नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके अत्यन्त तेज से युक्त हो गयी।

सा तु तप्त्वा तपो घोरं, दुश्चरं स्त्रीजनेन ह ।
गता स्वर्गं महाभागा, देव ब्राह्मण पूजिता ।

स्त्रियों से जिस तप का होना दुस्साध्य है, उस तप को इस महाभागा कन्या ने धारण किया। अन्त में देव ब्राह्मण पूजिता वह स्वर्ग को गयी।

(श्री महाभारत शल्य पर्व, गदायुद्धपर्व—५४/६, ७, ८)

इस महातपस्विनी, बालब्रह्मचारिणी को भी आज तक इस भूमण्डल पर किसी महापुरुष ने कोई भी अभद्र शब्द नहीं कहा। इसके विपरीत "देवब्राह्मण पूजिता" ही वह सदैव रही।

४—'अविवाहिता शबरी'

"अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्, यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।"

अहो; यह ध्रुव सत्य है, हे प्रभो! जिसकी जिह्वा पर आपका नाम है, वह श्वपच भी श्रेष्ठ है।

शबर भील जाति को कहते हैं। यथा—

नृपान्यां वैश्यतो जात:, शबर: परिकीर्तित:

मधूनि वृक्षादनीय, विक्रीणीते स्ववित्तये। (इति नारदीये)

अर्थ—जो वैश्य और क्षत्रियाणी के सयोग से उत्पन्न हो; उसे शबर' कहते हैं। वृक्षों से मधु निकालकर बेचे और उससे अपनी जीविका करे।

शबर' एक जंगली जाति होती है, अधिकतर इनके यहाँ बलिदान मांस, मदिरा का बहुत प्रचार है। शबरी के पिता भीलों के राजा थे। शबरी जब विवाह के योग्य हुई, तो उनके पिता ने एक दूसरे भील कुमार से इनका विवाह पक्का किया। विवाह के दिन निकट आये, सैकड़ों बकरे, भैंसे, बलिदान के लिए इकट्ठा किये। शबरी ने पूछा "ये सब जानवर क्यों इकट्ठे किये गये? उत्तर मिला, तुम्हारे विवाह के उपलक्ष में इन सबका बलिदान होगा। भक्तिमती भोली बालिका का सिर चकराने लगा। यह कैसा विवाह? जिसमें इतने प्राणियों का वध हो। इस विवाह से तो विवाह न करना ही अच्छा"। ऐसा सोंचकर वह रात्रि में उठकर जंगल में चली गयी और लौटकर फिर घर नहीं आयी।

(कल्याण—संत अंक-गीता प्रेस गोरखपुर पृ०सं० ३५१)

उपरोक्त यह एक भील (शबर) जाति की 'प्रसन्नेऽधमजन्मापि, शबरी मुक्ति-मापसा' (अध्यात्म रामायण अरण्य का. सर्ग १०/४२) नीच जादि में उत्पन्न हुई शबरी ने भी मुक्ति (मोक्षपद) प्राप्त कर लिया। इस अविवाहिता तपस्विनी के लिए महर्षि बाल्मीकि के सम्बोधन देखिए। श्री बाल्मीकी रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग ७४ में—

'श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्' (७४/७) धर्मपरायण।

'तपोधने' (७४/८) तपोधना (महान तपस्विनी)।

'सा सिद्धा सिद्ध सम्मता' (७४/१०) वह सिद्ध तपस्विनी।

'जटिला' चीरकृष्णाजिनाम्बरा (७४/३२) मस्तक पर जटा, शरीर पर चीर एवं कालामृगचर्म धारण करने वाली।

'चारु भाषिणी' (७४/९) सुन्दर भाषा बोलने वाली ।

इस प्रकार यह एक 'शबर' जाति में उत्पन्न होकर भी आजीवन अविवाहित रहते हुए अखण्ड ब्रह्मचारिणी रही और इसके लिए महर्षि बाल्मीकि प्रभृति किसी ने भी किसी प्रकार से अपशब्दों का प्रयोग नही किया; न ही हेय दृष्टि से देखा अब अगर हो सके तो इसे आप (श्री स्वामी जी) विवाहिता सिद्ध करें ।

राम रसिकावली ग्रन्थ के अनुसार भी शबरी अविवाहिता थी—

"विवाह योग्य होने पर घर में सैकड़ों पशुओं को इकट्ठे देखकर कारण पूछा, तो विदित हुआ कि विवाह में उन सबका बलिदान होगा। अतः घबड़ाकर जानवरों को मुक्त कर, बन में झोपड़ी बनाकर ऋषियों की सेवा करने लगी ।

सो शबरी भइ आइ के, दण्डक बिपिन विशाल
सेवा सन्तन चरण की, करन लगी सब काल ।
(राम रसिकावली)

५- बाल ब्रह्मचारिणी ब्राह्मण कन्या सुवर्ता

एक 'सुवर्ता' नाम की कन्या थी जो कि आजीवन अविवाहिता रही और महातपस्विनी बनकर भगवच्चिन्तन करते हुए मुक्त हुई । यथा—

एवमस्तु कहि यम चलिभयऊ । तुरत सुवर्ता यह व्रत लयऊ ।
जप तप लागी करन उदारा । कन्द मूल भखि भोग विसारा ।
विसराय तन सुख भोग जग के तुच्छ मन में जानि कै ।
लागी करन हरि भक्ति सुमिरन, ध्यान ज्ञान पिछानि कै ।
सब करम बंधन काटि कै, श्री राम के धामै गई ।
सुर सिद्ध मुनि गति, जौन दुर्लभ भजन करि पावत भई ।
(विशेष वर्णन देखो विश्राम सागर—अध्याय १३, १४)

६. ब्रह्मवादिनी 'धारिणी' एवं (७) 'वयुना'

तेभ्यो: दधार कन्ये द्वे, वयुनां धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ, ज्ञान विज्ञान पारगे ।
(श्रीमद् भागवत—४/१/६४)

तयोस्तु सन्ततिर्नभवज्जीवनमुक्तत्वादित्याह—उभे ते इति ।
(श्रीधरी टीका-४/१/६४)

'स्वधा' के 'धारिणी' और 'वयुना' नाम की दो कन्याएं हुईं । वे दोनों ही

ज्ञान विज्ञान पारंगत और ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाली थीं। उनके जीवनमुक्त होने से संतति नही हुई ।

८- रबिया

इस प्रकार केवल हिन्दू इतिहास में ही नही, अपितु अन्य दूसरे समाज में भी बाल ब्रह्मचारिणी भगवद्भक्ता देवियाँ हुई हैं । यथा विश्व प्रसिद्धा रबिया आज से १२०० वर्ष पहले थी । अपनी साधना से रबिया ने अपना जीवन ऐसा बना लिया था कि उनका दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती, उनका निष्कपट ईश्वर प्रेम, पवित्र चरित्र और अद्भुत प्रभाव देखकर तथा उनकी तेजस्वी वाणी सुनकर लोग चकित हो जाते। उन्हें नमस्कार करते और उनके नाम श्रवण से अपने को कृतार्थ मानते ।

(मुस्लिम सन्तो के चरित्र नामक पुस्तक से)

९- परम साध्वी मुक्ताबाई

--------×--------×-----

सन्त ज्ञानेश्वर की बहन परम साध्वी, परम तपस्विनीं मुक्तावाई भी आजीवन अविवाहिता रहकर भगवद्भजन में तल्लीन रहीं ।

उपरोक्त अविवाहिता तपस्विनी नारियों को समझ करके यदि स्वामी जी आपके पास में इन लोगों को विवाहिता सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण हो, तो इनके पति आदि का पूरा विवरण देते हुए सप्रमाण लिखें । हमारे पास अभी और भी सूची है । जिसको कि लिखकर व्यर्थ पुस्तक का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहते हैं।

कहीं की बात कहीं पर जोड़े ।

अब जहाँ तक उस वृद्धा अविवाहिता तपस्विनी कन्या का उदाहरण देते हुए कहा -

'जब इतनी तपस्विनी वृद्धा कन्या को अन्त में विवाह करना पड़ा और विवाह किए बिना उसको स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति नहीं हुई । ब्रह्म लोक की प्राप्ति नहीं हुई, शान्ति को नहीं प्राप्त हुई……… ।'

यह भी अविचारित रमणीय बात है । श्री स्वामी जी का यह भी उद्धरण अप्रसांगिक है । वास्तव में वहाँ का विवरण इस प्रकार है

"प्राचीन काल में एक कुणिगर्ग" नामक महान् यशस्वी ऋषि हो गये, उन्होंने बड़ी तपस्या करके अपने मन से ही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की । पुत्री को देखकर मुनि को बड़ी प्रसन्नता हुई । कुछ काल के पश्चात् वे इस शरीर का त्याग करके स्वर्ग में चले गये । अब आश्रम का भार उस कन्या के ऊपर ही आ पड़ा।

महता तपसोग्रेण कृत्वाऽऽश्रममनिन्दिता ।
उपवासैः पूजयन्ती पितॄन् देवांश्च सापुरा ॥

(महाभारत श० पर्व ५२-६)

अर्थ-वह कन्या आश्रम बनाकर बड़ी कठोर तपस्या तथा उपवास के साथ-२ देवताओं और पितरों का पूजन करती हुई वहाँ रहने लगी। उसे उग्र तपस्या करते बहुत समय बीत गया।

ततः सा तपसोग्रेण पीडयित्वाऽऽमनस्तनुम् ।
पितृदेवार्चनरता बभूव विजने वने ।

(महाभारत श० पर्व ५२-८)

अर्थ-तब वह उग्र तपस्या के द्वारा अपने शरीर को पीड़ा देकर निर्जन वन में पितरों तथा देवताओं के पूजन में तत्पर हो गयी।

सा नाशकद् यदा गन्तुं पदात् पदमपि स्वयम् ।
चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा ।

(महाभारत श० प० ५२-१०)

अर्थ-तपस्या करते करते जब वह स्वयं एक पग भी चलने में असमर्थ हो गई तब उसने परलोक में जाने का विचार किया।

मोक्तुकामां सुतां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत् ।
असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे ॥

(महाभारत श० पर्व ५२-११)

अर्थ-उसकी देह त्याग की इच्छा देख देवर्षि नारद ने उससे कहा महान् व्रत का पालन करने वाली निष्पाप नारी ! तुम्हारा तो अभी विवाह संस्कार भी नही हुआ, तुम तो अभी कन्या हो। फिर तुम्हें पुण्यलोक कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?

अब यहाँ विचारणीय विषय यह है कि सुलभा और गार्गी के समान सर्वत्याग पूर्वक लोक परलोक समस्त ऐहिक भोगों से उपरत चित्तवाली ब्रह्मात्मैक्य परायणा; जीवनमुक्त ब्रह्मवादिनी नारियों की बात चल रही थी। उनकी अन्तिम गति क्या होती है ? स्वयं श्रुति भगवती घोषणा करती हैं। यथा-

"योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।"

(बृहदारण्यक उप० ४-४-६)

अर्थ-जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है, उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। वह ब्रह्म ही रहकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

वह आत्मवेत्ता न किसी लोक की कामना करता है न परलोक की, उसके सारे संकल्प शान्त हो जाते हैं। सारी इच्छाएँ, वासनाएँ कामनाएँ ज्ञान रूपी

अग्नि में दग्ध हो जाती हैं । अत: उसके अन्दर किसी पित्रादि लोक की न कामना है और न कहीं गमनागमन ही उसका होता है ।

द्वितीय पक्ष के लिए जहाँ पर स्वर्गादि लोक प्राप्त करने की कामना है। तहाँ श्रुति का संकेत है-"कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोक:" कर्म से पितृलोक और विद्या से (देवों की उपासना से) देवलोक प्राप्त होता है । पितृलोक चाहिए तो पितरों की पूजा करें और देवलोक चाहिए तो देवाताओं की उपासना करें । इस सिद्धान्त के अनुसार वह बूढ़ी कन्या जो चाहती थी तत्सम्बन्धित साधनों को अपनाया था । स्पष्ट है-"पितृ देवार्चनरता बभूव विजने वने" एकान्त निर्जन वन में पितर और देवों की पूजा करता रही । इस प्रकार की पूजा आदि के विषय में श्रुति का संकेत-

अन्धन्तम: प्रविशान्तियेऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य ऽ विद्यायारँता: ।।
(ईशावास्योपनिषद् ९)

अर्थ-जो अविद्या (कर्म) की उपासना करते हैं वे (अविद्या रूप) घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो विद्या (देवों की उपासना में ही रत हैं, वे मानो उससे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं । विशेष इसे शांकर भाष्य में देखिये इस नियम के अनुसार तो वह ऐसे पथ पर ही थी जिसका कि परिणाम अन्धकार अविद्या आदि ही हैं । अत: उसका निर्णय उसी मार्ग की व्यवस्था करने वाले शास्त्र के अनुसार होगा । उस बुढ़िया की घटना को लेकर जीवनमुक्तों में, ब्रह्मनिष्ठों में घटावें और उन्हें विवाह के लिए प्रेरित करें यह तो ठीक नहीं है । हाँ, यदि सुलभा के जीवन में ऐसी घटना घटी हो तो बताने की कृपा करें । वह भी अविवाहिता थी । बात सुलभा के चरण चिह्नों पर, आदर्शों पर चलने वाली नारियों की है न कि स्वर्ग, पितृलोक आदि की आकांक्षिणियों की है । अत: इस प्रसंग में उस बुढ़िया को उपस्थित करना अनुपयुक्त है । यह उसी प्रकार है जैसे-

कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा ।
भानुमती ने कुनबा जोड़ा ।।
स्वामी जी भी नहीं हैं थोड़े ।
कहीं की बात कहीं पर जोड़े ।।

पूर्व दी हुई आप अपनी चुनौती को, "जो अपने सच्चे पिता से पैदा हुआ हो जिसने अपनी माँ का दूध पिया हो, वह यहाँ आ करके सिद्ध करे कि किस स्त्री ने विवाह नहीं किया, कोई सज्जन बताएं तो हम उसको अपना गुरू माने ।" याद रखते हुए उपरोक्त नारियों को, स्वामी जी महाराज ! लिखित रूप में सप्रमाण विवाहिता सिद्ध करने की कृपा करें । इत्योम्

स्त्री संन्यास विचार

स्त्रियों के संन्यास [त्याग] तपश्चर्या आदि पर कीचड़ उछालते हुए श्री स्वामी जी ने कहा—

"आपके नैमिष के नारदानन्द जी की एक शिष्या अमेरिकन लेडी थी। वह भगवा कपड़ा पहन करके फिरोजपुर में हमारे पास आई। हमने आते ही उससे कहा, "माई! तुझे यह गलत नरक में जाने का रास्ता किस ने बताया।" बड़ी बिगड़ी। वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण रामायण, महा-भारत में तो स्त्रियों के संन्यास का तो कहीं उल्लेख नहीं है। आज तक किसी ने संन्यास लिया नहीं।"

इसके पूर्व भाषण में कहा था-

"अगर यह स्त्रियाँ विवाह नहीं करेगी, तो ये विचारे (स्त्रियों की ओर संकेत करते हुए) अगर तुम लोग बाबा बन जाओगी, विवाह नहीं करोगी, तो (पुरुषों की ओर हाँथ उठाते हुए) यह सब विचारे रण्डुवे रह जायेंगे।"

जिस स्त्रियों को आप संन्यासी एक.....................यह सब माइयाँ कहेंगीं, हम भी विवाह नहीं करते। बाबा जी बन करके रहेंगी। फिर ये बिचारे सारे जितने हैं, (श्री स्वामी जी के साथ के व्यक्ति ने पूर्ति किया— रण्डुवा हो जायेंगे) ये सब अब हम आपके सामने उस शब्द का प्रयोग कर के इनको रण्डुवा बनायेंगे। इनकी जितनी पत्नियाँ, इनकी बहनें हैं, वह कहेंगीं "हम भी संन्यास ले सकते हैं, चलो छोड़ो इन्हें, सबको। कौन घर का काम करेगा ? हम बाबा जी बन जायेंगी"—

मूड़ मुड़ाये तीन गुण, सिर की मिट गई खाज।
खाने को बढ़िया मिले, लोग कहें महराज॥

न कमाई, न सगाई ऊपर से मंच पर बैठ करके सब लोग पैर छुवेंगे। क्यों नहीं चाहेंगी ये माई ? सब एक ही रास्ते पर चल पड़ेंगी और फिर आजकल की लड़कियों के लिए लड़का मिलना बड़ा कठिन हो गया है। सब लड़कियों को यही रास्ता है कि बन जाओ बाबा जी। लड़कियों के विवाह न करने से हिन्दू जाति सदा के लिए नष्ट हो जायेगी।"

इस विषय में हम से 'टू दि प्वाइन्ट' उत्तर प्राप्त करने के लिए श्री स्वामी जी ने कहा-

"व्याख्यान नहीं देना, मैंने आपकी बात का 'टू दि प्वाइन्ट' जवाब दिया।"

प्रथमतः हमारे देश और विदेश के पाठक गण यह देखें कि पुरी पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी ने अपने विपक्ष का खण्डन करने के लिए किस प्रकार की भाषा, शब्द तथा युक्ति पूर्ण तर्क आदि का आश्रय लिया है ! इस प्रकार अव्यवहारिक एवं व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करके शंकराचार्य के पद के गौरव को भी मलिन किया है। इसके अतिरिक्त 'टू दि प्वाइन्ट' हमसे उत्तर भी चुनौती देकर माँगा है अब 'टू दि प्वाइन्ट' उत्तर देने में हमारा कोई भी दोष नहीं होगा। सम्पूर्ण पुस्तक में श्री महाराज जी की चुनौती सहित 'टू दि प्वाइन्ट' याद रखा गया है। अब क्रमशः इस पर विचार होगा।

धर्माधर्म के विषय में प्रमाण विचार

धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए शास्त्रों ने मुख्य चार स्थल बताए हैं-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।

[मनुस्मृतिः २/१२]

अर्थ-वेद, स्मृति, आचार और मन की प्रसन्नता ये चार साक्षात् धर्म के लक्षण हैं। [सदाचारः=शिष्टाचारः]

श्रुति स्मृति सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः
सम्यक् संकल्पजः कामो, धर्ममूलमिदं स्मृतम् ।

[याज्ञवल्क्य स्मृतिः आचा०-७]

अर्थ-वेद, धर्म शास्त्र, सज्जनों के आचरण, अपने आत्मा के अनुकूल [उत्तम] कार्य तथा विवेक पूर्ण संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा, ये सब धर्म के मूल कहे गये हैं।

[सदाचार.=सता शिष्टानामाचारोऽनुष्ठानम्]

इस प्रकार-

वेदोऽखिलो धर्ममूलं, स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

[मनुस्मृतिः २/६]

अर्थ-सर्व वेद, वेदों को जानने वाले की स्मृति और ब्राह्मणत्वादि तेरह प्रकार के शील या राग-द्वेष शून्यता, महात्माओं का आचरण और अपने मन की प्रसन्नता, ये सब धर्म के मूल हैं।

इस प्रकार धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए मुख्य चार प्रमाण स्थल हैं :—

(१) श्रुति (वेद) (२) मन्वादि स्मृतियाँ (३) सज्जनों का आचरण (सदाचार) और (४) अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता (विवेक पूर्ण आत्म सन्तोष)।

इस विषय में वशिष्ठ जी का संकेत:-

अथातः पुरुष निःश्रेयसार्थं धर्म जिज्ञासा । श्रुति स्मृति विहितो धर्मः । तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् । शिष्टः पुनरकामात्मा ।

(वशिष्ठ धर्म सूत्र १/१, ३, ४, ५)

अर्थ:— इस प्रकार अब पुरुष के निःश्रेयस् (मोक्ष) के लिए धर्म की जिज्ञासा की जाती है ।

श्रुति स्मृति विहीन कार्य ही धर्म हैं । उसके अप्राप्त होने पर महापुरुषों का आचारण ही प्रमाण है । शिष्ट वह है जो (स्वार्थमय) कामनाओं से रहित हो । अकामात्मा का ही आचार प्रमाण माना जा सकता है ।

देश जाति कुलनाञ्च ये धर्माः प्राक् प्रवर्तितः
तथैव ते पालनीयाः प्रजा प्रक्षुभ्यतेऽन्यथा ।।
जनायरक्तिर्भवति बलं कोशं च नश्यति ।
अनेन कर्मणा नैते, प्रायश्त्तिदमार्हकाः ।।

(वृहस्पति)

अर्थ:— वृहस्पति का कथन है :– "देशाचार, जात्याचार और कुलाचार का जहाँ भी वे प्राचीनकाल से प्रचलित हों, उसी प्रकार आदर करना चाहिए । नहीं तो प्रजा में क्षोभ उत्पन्न होता है । राजा के बल और कोश का नाश होता है । ऐसे आचार के पालन से प्रजा प्रायश्चित अथवा दण्ड की भागी नहीं होती ।

इस प्रकार उपरोक्त प्रमागों में जो शिष्टों का आचार है, वह भी परम प्रमाण के रूप में माना गया है और जिस देश में, जिस जाति में, जिस कुल में पूर्व काल से जैसा आचार परम्परा से चला आया हो, वह भी तत् तत् स्थानों का प्रमाण होता है ।

अत: किसी भी विवादास्पद् धर्म संबंधी विषय का निर्णय उपरोक्त प्रमागों के आधार पर ही होगा ।

संन्यास का मुख्य स्वरूप [लक्षण] क्या है ?

सर्व प्रथम यह समझ लिया जाय कि संन्यास शब्द का क्या अर्थ है ?

संन्यासः=(सम+नि+अस्+घञ्)

जिसका अर्थ होता है, छोड़ना, त्यागना ।

(१) सांसारिक विषयों, अनुरागों से पूर्ण वैराग्य ।

(२) सांसारिक वासनाओं का पूर्णरूपेण परित्याग ।

इस लक्षण के अनुसार सांसारिक वासनाओं का पूर्ण परित्याग करके जो नारायण में स्थित है, जो एक मात्र भगवान को ही अपना सर्वस्व एवं आश्रय अनुभव करता हुआ किसी से राग द्वेष नहीं करता, ब्रह्मात्मैक्य अनुभूति हस्तामलकवत् करता है, वह ही संन्यासी है ।

पुनश्च:—

(१) ब्रह्मणि नितराभासः संन्यासः

(पू० श्री शंकरानन्द जी सरस्वती)

अर्थ:—ब्रह्म में नितरां (सदैव) आसीन रहना संन्यास है ।

[२] वाह्य प्रवणता राहित्येन चित्तस्य ब्रह्मणि ब्रह्मात्मनावस्थान लक्षणो निर्विकल्पक समाधिः प्रत्यग्दृष्ट्याऽनात्मप्रत्यय निरासः संन्यासः सविकल्पक समाधिः द्वावप्येतौ संन्यासौ प्रधानौ । एतयोः श्रवण मननयोश्चाऽङ्गभूतस्तत्प्रतिकुलानां सर्वेषां च कर्मणां परित्याग लक्षणः संन्यास इत्येव संन्यास शब्दार्थस्त्रिधाभिघते ।

(श्रीमद् भगवद गीता शंकरानन्दी टीका से ५/२)

अर्थ:— वाह्य आसक्ति से रहित होकर ब्रह्म में चित्त का ब्रह्मस्वरूप से स्थित हो जाना रूप निर्विकल्पक समाधि संन्यास है ।

प्रत्यक् दृष्टि से अनात्म प्रत्यय का निरास—संन्यास—सविकल्पक समाधि है । ये दोनों संन्यास प्रधान हैं । इन दोनों के श्रवण और मनन में अङ्गभूत इनके प्रतिकूल सब कर्मों का परित्याग रूप तीसरा संन्यास है, यों संन्यास शब्द का अर्थ तीन प्रकार का है ।

संन्यास प्रकार

यह संन्यास लिङ्ग और अलिङ्ग भेद से दो प्रकार का है । जहाँ दण्ड-ग्रहण पूर्वक जो संन्यास है वह लिङ्ग संन्यास है और दण्डग्रहण से बिना जो संन्यास है उसका नाम अलिङ्ग संन्यास है । इतनी ही विशेषता को छोड़कर दूसरे भिक्षाटनादि वाह्य धर्म तथा शमदमादिक अन्तर्धर्म लिङ्ग संन्यासियों के और अलिङ्ग संन्यासियों के समान ही होते हैं ।"

(पू० श्री स्वामी चिद्घनानन्द जी, आत्मपुराण टीका अध्याय ७)

और संन्यासाश्रम के समग्र चिन्हों से रहित भी अलिङ्ग संन्यास होता है । यथा :—

तत्राभवद्भगवान्व्यास पुत्रो,
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभ तुष्टो
वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ।।

(श्रीमद्भागवत १/१९/२५)

इस अलिङ्ग संन्यास में स्त्रियों का भी अधिकार हैं यथा—

ब्रह्मचर्यादिकं धर्मं, चतुर्थाश्रमवासिनाम् ।
योषिदाद्याश्च कुर्वन्तु, आश्रमस्य विधारणम् ।।

[आत्म पुराण अध्याय ७/५१९]

अर्थ :-पूर्व जन्म के पूण्य कर्म प्रभाव से जिन क्षत्रिय पुरुषों को अथवा वैश्य पुरुषों को तथा त्रैवर्णिक [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य] स्त्रियों को इस संसार से उत्कट वैराग्य की प्राप्ति होवे तो वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य स्त्रियाँ अलिङ्ग [दण्ड बिना] सन्यास को धारण करके लिङ्ग संन्यासियों के अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदिक धर्म जो शास्त्र कहते हैं उन सभी धर्मों का सम्पादन करें ।

(पू० श्री स्वामी चिद्घनानन्द जी द्वारा अनुवादित)

चतुर्थमाश्रमं नैव, कारयेत्तु कदाचन,
लिङ्ग धारणरूपंतमलिङ्गं, धर्मतः समम् ।
कारयेत्——————————[अध्यात्मपुराण, अध्याय ७/५२२]

अर्थ :–इसलिए वह ब्रह्मवेत्ता विद्वान पुरुष अधिकारी क्षत्रिय वैश्य तथा त्रैवर्णिक स्त्रियों को दण्ड ग्रहण पूर्वक लिङ्ग संन्यास कदाचित् न करवाए । और जो उन क्षत्रिय वैश्य पुरूषों को तथा त्रैवर्णिक [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य] स्त्रियों को इस संसार से उत्कट वैराग्य होवे, तो वह विद्वान् पुरुष तिन क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री जनों को दण्ड के ग्रहण बिना अलिङ्ग संन्यास करावे ।

(पू० श्री स्वामी चिद्घनानन्द जी द्वारा अनुवादित)

विद्याङ्ग तत्फलात्मानं, गार्गी विदुरयोरपि ।
स्त्रीशूद्रयोर्भाष्यकारः, संन्यासमनुमन्यते ।

(बृहदारण्यक वार्तिकसारः ३/५/३८)

भाष्यकार भगवान श्री शंकराचार्य विदुरादि शूद्र और गार्गी प्रभृति स्त्रियों का सर्वकर्म फलरूप संन्यास मानते हैं । पूर्व जन्मों के सुकृत के संस्कार वश जिन विदुर धर्म व्याध आदि को ज्ञानोत्पत्ति हुई है उनमें फल प्राप्ति का प्रतिषेध नहीं कर सकते । कारण कि ज्ञानका फल नियत है, ऐसा नियत नहीं कि ज्ञान होने पर भी स्त्री और शूद्र हैं, इसलिए फल न हो ।

सर्वकर्मफल त्याग पूर्वक स्वाश्रम विहित कर्मफल अथवा उस कर्म के त्याग पूर्वक आत्म चिन्तन में कोई अधिकार का प्रश्न ही नहीं होता । हर एक जाति और लिङ्ग में विशिष्ट पुरुष होते हैं, जिनका वास्तविक लक्ष्य परमात्मचिन्तन ही होता है, इस विषय की विशेष जिज्ञासा हो तो पुराण आदि देखिए । केवल लिङ्ग धारण व्यर्थ है और इस विषय का विवाद भी निष्प्रयोजन है अतएव हेय है ।।३८।।

(पं० प्रवर श्री हरिहर कृपालु द्विवेदी कृतभाषानुवाद)

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैक अमृतत्त्वमानशुः

(कैवल्योपनिषद् खण्ड १/२)

अर्थ–किसी को कर्म द्वारा, प्रजा धन द्वारा मुक्ति नहीं हुई किन्तु त्याग द्वारा कई एक को मुक्ति प्राप्त हुई ।

अस्मिंश्चत्यागें स्त्रियोऽप्यधिक्रियन्ते ।

[जीवन्मुक्ति विवेक]

अर्थ–इस त्याग रूप संन्यास में स्त्रियों को भी अधिकार प्राप्त है । और महाभारत की चतुर्धरी टीकाकार ने 'सुलभा जनक संवाद' में सुलभा के संन्यास का वर्शन कराते हुए स्त्री संन्यास के विषय में तो यहाँ तक लिखा है–

"भिक्षुकी त्यनेन स्त्रीणामपि प्राग् विवाहाद्वा वैधव्यादूर्ध्वं सन्नयासेऽधिकारोऽस्तीति दर्शितम् । तेन भिक्षाचर्य्यं, मोक्षशास्त्र श्रवणं, एकान्त आत्मध्यानं च ताभिः कर्तव्यं, त्रिदण्डादिकं च धार्यम्, इति मोक्ष धर्मे चतुर्धरी टीकायां सुलभाजनक संवादः ।

[जीवनमुक्ति विवेक से उद्धरित अंश]

अर्थ–कारण यह है कि श्रुति ने 'भिक्षुकी' इस पद के द्वारा विवाह के पूर्व या विधवा होने के बाद स्त्रियों को भी संन्यास में अधिकार है, ऐसा श्रुति द्वारा दिखलाया गया है । अतएव उसे भिक्षाटन, मोक्ष शास्त्र का श्रवण, एकान्त स्थान में आत्मध्यान और त्रिदण्डादि संन्यासाश्रम के चिह्न धारण करना चाहिए । यह वार्ता मोक्ष धर्मान्तर्गत सुलभा जनक के संवाद में चतुर्धरी टीका में स्पष्ट है। और किसी भी आश्रम में न रहते हुए अर्थात् अनाश्रमी तक को भी आत्म साक्षात्कार में अधिकार है । परमात्म चिन्तन करते हुये अपना कल्याण करने में अधिकार है । यथा–

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः (ब्रह्म सूत्र ३/४/३६)

अन्तरा–आश्रमं विना वर्तमानानामपि (ब्रह्मविद्यायामस्ति अधिकारः कुतः ?), तद्दृष्टेः–तस्य–ब्रह्मविद्याधिकारस्याऽनाश्रमिणां रैक्वं प्रभृतीनां श्रुतौ स्मृतौ च दर्शनात् ।

भावा अर्थ-आश्रम रहित पुरुषों का भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है क्योंकि श्रुति और स्मृति में रैक्व प्रभृति अनाश्रमियों का ब्रह्मविद्या में अधिकार देखा जाता है ।

इसी सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान भाष्यकार आचार्य शंकर ने लिखा है-अन्तरां चापि तु, अनाश्रमित्वेन वर्तमनोऽपि विद्यायामधिक्रियते । कुतः ? तद्दृष्टेः । रैक्व वाचकन्वी प्रभृतीनामेवं भूतानामपि ब्रह्मवित्त्व श्रुत्युपलब्धेः ॥३६॥

'अन्तराचापि' अनाश्रमी रूप से स्थित पुरुष का भी विद्या (ब्रह्मविद्या) में अधिकार है । किससे ? इससे कि ऐसी श्रुति देखी जाती है-रैक्व, वाचकन्वी (गार्गी) आदि ब्रह्मवेत्ता थे, ऐसी श्रुति उपलब्ध होती है ॥३६॥

यहाँ एक बात पुनः और ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त प्रमाण से गार्गी का अविवाहिता रहना ही सिद्ध हो रहा है, क्योंकि वह अनाश्रमी होकर अवधूत रूप में रहतीं थीं। यदि वह विवाहिता होती, तो भाष्यकार यहाँ पर अनाश्रमी के उदाहरण के रूप में उन्हें न दिखाते।

अतस्त्वितर ज्यायो लिङ्गाच्च (ब्रह्मसूत्र ३/४/३९)

अर्थ: अनाश्रमित्व की अपेक्षा आश्रमित्व शीघ्र विद्या का साधन है क्योंकि- 'तेनैति ब्रह्मवित्' इत्यादि श्रुति में पुण्यकृत विशेषण रूप श्रुति लिङ्ग है। इसी पर शांकरभाष्य :-

"अतस्त्वन्तराल वर्तित्वादितरदाश्रमवर्तित्वं ज्यायो विद्यासाधनम् श्रुति स्मृति संदृष्टत्वात्। श्रुतिलिङ्गाच्च 'तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च (बृ०-४/४/९) इति।"

भाष्य का अनुवाद

परन्तु इससे-अन्तराल में रहने से-अनाश्रमी रहने से, अन्य अर्थात् आश्रम में रहना श्रेष्ठ-विद्या साधन है, क्योंकि श्रुति और स्मृति में ऐसा देखा जाता है। 'तेनैति ब्रह्मवित०' शुद्धसत्व ब्रह्मवेत्ता उस मार्ग से जाता है, ब्रह्म को प्राप्त करता है। ऐसी श्रुति लिङ्ग है।

सरल हिन्दी

इससे यानी बीच ही में रहने से संन्यास आश्रम ग्रहण करना यह विद्या (ब्रह्मविद्या) का अधिक अच्छा साधन है। ऐसी श्रुति और स्मृति दोनों में दिखाई देता है।

(यतिवर भोले बाबा कृत अनुवाद)

इसी सूत्र के आधार पर सुलभा ने अनाश्रमी न रहकर संयास ग्रहण किया।

उपरोक्त सूत्र ३६ के भाष्य में भगवान आदि शंकराचार्य जी ने स्त्री जगत को संकेत करते हुए वाचक्नवी (गार्गी) का उल्लेख किया है। सूत्र ३९ के भाष्य में यह संकेत किया कि अनाश्रमी रहने की अपेक्षा इतर आश्रमी (संन्यास आश्रमी) होवे, तो अच्छा साधन है।

सर्वभूत हितः शान्तस्त्रिदण्डी एक कमण्डलुः।
एका रामः परिव्रज्य शिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥ (याज्ञ०स्मृति ३/५८)

इसकी व्याख्या करते हुए 'मिताक्षरा' टीकाकार ने बौधायन का एक सूत्र उद्धरित करते हुए लिखते हैं-

एकारामः प्रव्रजितान्तरेणासहायः सन्यासिनीभिः स्त्रीभिश्च। 'स्त्रीणां चैके' इति बौधायनेन स्त्रीणामपि प्रव्रज्यास्मरणात्।

इस विधि के अन्तर्गत ही सुलभा के त्रिदण्ड युक्त संन्यास का महाभारत में दर्शन होता है।

उपरोक्त प्रमाणों से 'स्त्री संन्यास' शास्त्र विहित सिद्ध है।

कारणकार्य सहित सर्व अनात्म जगत के त्याग पूर्वक परमात्मचिन्तन करने वालों को शास्त्रानुमोदन

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।
निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥९०॥

अर्थ :-(मनुष्य) प्रवृत्त कर्म का सेवन कर देवों की समानता (स्वर्ग) पाता है और निवृत्त कर्म का सेवन करता हुआ पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश) का अतिक्रमण करता अर्थात् पुनर्जन्म रहित होकर मोक्ष पाता है ।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥९१॥

अर्थ :-सम्पूर्ण (चराचर) जीवों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण (चराचर) थीवों को देखता हुआ आत्मयाजी ब्रह्मत्व अर्थात् मुक्ति को पाता है ।

(मनुस्मृति: अध्याय १२/९०, ९१)

'सेवमानः' 'आत्मयाजी' मनुष्य, पुरुष, नर आदि शब्द जहाँ कहीं पर आवें, वे मात्र लिङ्ग वाचक नहीं होंगे, अपितु पुरुष जाति वाचक होंगे, जिसमें कि सभी लिङ्गों का समावेश होगा । यथा :-'नर समान नहि कवनिउदेही, 'बड़े भाग मानुष तनु पावा' । आदि ।

यदि इसमें कोई कहे कि नारी के लिए नहीं पुरुष के लिए लिखा है तो इस कथन से उसके अविवेक का ही दर्शन होगा ।

जिसकी समस्त भोगाकांक्षा के अभाव पूर्वक पर ब्रह्म सच्चिदानन्द में अन्तःकरण की सहज जन्मजात प्रवृत्ति और स्थिति होती है वहाँ संन्यास लिया अथवा दिया नहीं जाता है । उस असाधारण साधक या जिज्ञासु में जन्म जाति संन्यास होता है । इस प्रकार के संस्कारी साधक को सांसारिक प्रवृत्ति मार्ग में जाने के लिए प्रेरित न करे । अन्यथा उसके लिए पङ्क प्रक्षालन न्यायानुसार पहले कीचड़ लगावे फिर धोवे । यही होगा । इसी सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत वचन है ।

पुत्रांश्च शिष्यांश्चनृपो गुरुर्वा
मल्लोक कामो मदनुग्रहार्थः ।
इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान,
न योजयेत्कर्मसु कर्म मूढान् ।
कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत,
निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

(श्रीमद्भागवत ५/५/१५)

अर्थ:-जिसको मेरे लोक की इच्छा हो अथवा जो मेरे अनुग्रह की प्राप्ति को ही परम पुरुषार्थ मानता हो वह राजा हो तो अपनी अबोध प्रजा को, गुरु अपने शिष्यों को, पिता अपने पुत्रों को ऐसी ही शिक्षा दे। अज्ञान के कारण यदि वे उस शिक्षा के अनुसार न चलकर कर्म को ही परम पुरुषार्थ मानते रहे तो भी उनपर क्रोध न करके उन्हें समझा-बुझाकर कर्म में प्रवृत्त न होने दें। उन्हें विषयासक्ति युक्त काम्यकर्मों में लगाना तो ऐसा ही है, जैसे किसी अन्धे मनुष्य को जान-बूझकर गड्ढे में ढकेल देना। इससे भला किस पुरुषार्थ की सिद्धि हो सकती है ?

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्ट दृष्टि-
यॊंऽर्थान् समीहेत निष्कामकामः।
अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतो-
रनन्त दुख च न वेद मूढ़ः।

(श्रीमद्भागवत ५/५/१६)

अर्थ :-अपना सच्चा कल्याण किस बात में है ? इसको लोग नहीं जानते, इसी से वे तरह-तरह की भोग कामनाओं में फंसकर तुच्छ क्षणिक सुख के लिए आपस में वैर ठान लेते हैं और निरन्तर विषय भोगों के लिए ही प्रयत्न करते रहते हैं। वे मूर्ख इस बात पर कुछ भी विचार नहीं करते कि इस वैर विरोध के कारण नरकादि अनन्त घोर दुखों की प्राप्ति होगी।

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्,
अविद्यायामन्तरे वर्तमानम्।
दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं,
प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम्॥

(श्रीमद्भागवत ५/५/१७)

अर्थ :-गढ़े में गिरने के लिए उल्टे रास्ते से जाते हुए मनुष्य को जैसे आँख वाला पुरुष उधर नहीं जाने देता, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य को अविद्या में फंस कर दुःखों की ओर जाते देखकर कौन ऐसा दयालु और ज्ञानी पुरुष होगा, जो जानबूझ कर भी उसे उसी राह पर जाने दे, या जाने के लिए प्रेरणा करे ?

गुरूर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्,
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेत मृत्युम्॥

(श्रीमद्भागवत ५/५/१८)

अर्थः—जो अपनी प्रिय सम्बन्धी को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फांसी से नहीं छुड़ाता वह गुरु—गुरु नहीं है, स्वजन—स्वजन नहीं है पिता—पिता नहीं है, माता—माता नहीं है, इष्टदेव—इष्टदेव नहीं है, पति पति नहीं है।

भगवच्चरणारविन्दों से विमुख करते हुए संसारोन्मुख बचनों का उत्तर देते हुए भरत जी कहते हैं—

जरउ सो सम्पत्ति सदन सुखु, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद, करै न सहस सहाइ॥

(श्री रामचरित मानस २/१८५)

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां,
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पाप जीवाः।
यद्यद्भुतक्रम परायणशीलशिक्षा—
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुत धारणा ये॥

(श्रीमद्भागवत २/७/४६)

अर्थः-जिन्हें भगवान के प्रेमी भक्तों का सा स्वभाव बनाने की शिक्षा मिली है वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पाप के कारण पशु पक्षी आदि योनियों में रहने वाले भी भगवान की माया का रहस्य जान जाते हैं, और इस संसार सागर से सदा के लिए पार हो जाते हैं। फिर जो लोग वैदिक सदाचार का पालन करते हैं, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

समस्त ऐहिक सुखों की कामना का त्याग रूप संन्यास पूर्वक जो भगवच्चरणारविन्दों में अनुरक्त है ऐसा महा नीच से नींच भी जाति, योनि आदिक में उत्पन्न हो वह भी भगवान का परम प्रिय है। इसी संदर्भ में संकेत करते हुए भगवद्वचन-

भक्तिवंत अति नीचहु प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥

श्री राम चरित मानस ७/८५-१०)

अर्थात् अन्त्यज चाण्डाल, श्वपच आदि भी क्यों न हों, संसार की भोगवासना त्यागपूर्वक भगवद्भक्त होने से वर्णाश्रम में वह नीच भले ही माना जाय, पर भगवान की व परमार्थ दृष्टि में वह उच्च वर्णों से अधिक प्रिय है क्योंकि प्रभु के गोत्र वाला हो जाता है, उसका गोत्र अच्युत गोत्र होता है—

साहिब को गोत, गोत होत है गुलाम को

[कवितावली]

अपने गोत्र वाला सबको प्रिय होता ही है, केवल श्वान वृत्ति वालों को छोड़कर।

श्रीमद्भागवत में देखो, ऐहिक सुख त्यागी, परम वीतरागी भगवान के अनन्य भक्त प्रहलाद क्या शिक्षा दे रहे हैं—

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ।
प्रणिनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलयाभक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥

[श्रीमद्भागवत ७/७/५१-५२]

अर्थः-दैत्य बालकों ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविधि ज्ञानों से सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ शारीरिक और मानसिक शोच और बड़े-बड़े व्रतो का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् निष्काम प्रेम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं और सब तो विडम्बना मात्र है।

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्त भक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम् ॥

[श्रीमद्भागवत ७/७/५४-५५]

भगवान कीं भक्ति के प्रभाव से दैत्य. यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ शूद्र, गोपालक अहीर, पक्षी मृग और बहुत से पापी जीव भी भगवद्भाव को प्राप्त हो गये हैं। इस ससार में या मनुष्य शरीर में जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एक मात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उस भक्ति का स्वरूप है-सर्वदा सर्वत्र सब वस्तुओं में भगवान का दर्शन।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वर्णित प्रह्लाद के इस संकेत में किसी भी प्राणी के मुख्य उद्देश्य का दर्शन हो रहा है और उसमें सर्वभाव से भगवद्शरणागति में स्त्री के अधिकार का हनन नहीं किया गया है। और भी देखिए रामचरित मानस में-

एक पिता के विपुल कुमारा । होंहि पृथक गुन शील अचारा ॥
कोउ पंडित को तापस ज्ञाता । कोउ धनवन्त सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई । सब पर पितहिं प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भक्त वचन मन कर्मा । सपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
यहि विधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥
अखिल विश्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन महँ जो परिहरि मद माया । भजै मोंहि मन बच अरु काया ॥

पुरुष नपुसंक नारि वा, जीव चराचर कोइ ।
सर्वभाव भजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ।।
(श्रीराम चरित मानस ७–८७)

ऊपर चौपाई नम्बर १ में 'कुमारा' शब्द आया है, इसको लेकर के भी श्री स्वामी जी कह सकते हैं कि वहां 'कुमारा' है, 'कुमारी' नहीं है । यहाँ पर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि 'कुमार' कहा 'कुमारी' नहीं कहा । 'कुमार' शब्द यहाँ सन्तान मात्र का उपलक्षण है । भाव यह है कि परमात्मा को, भगवान को जीव मात्र प्रिय है, क्योंकि सब उनकी सन्तान हैं ।

इस प्रकार "तिनमहँ जो परिहरि मद माया" यही संन्यास का लक्षण है और "भजै मोहि मन बच अरु काया" यह संन्यास का उद्देश्य है यहाँ पर यह तात्पर्य है,

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्वभाव भजि कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।।

यह भगवान का निर्णय है, ध्यान दीजिए श्री स्वामी जी के अनुसार यहाँ पर भी 'नारि' शब्द नहीं रहना चाहिए था । जो स्मृतियों में आश्रम क्रम संन्यास, लिङ्ग संन्यास का संस्कार संकेत किया गया है, उसका भी तात्पर्य केवल दण्डादि चिन्ह मात्र से नहीं है, अपितु पर ब्रह्म में स्थित होना है । यथा–

कर्मत्यागान्न संन्यासो न प्रेषोच्चारणेन तु ।
संधौ जीवात्मनोरैक्यं संन्यासः परिकीर्तित ।।१७।।
वमनाहारवद्यस्य भाति सर्वेषणादिषु ।
तस्याधिकारः संन्यासे व्यक्तदेहाभिमानिनः ।।१८।।
यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु ।
तदैव संन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत् ।।१९।।
द्रव्यार्थमन्न वस्त्रार्थं यः प्रतिष्ठार्थमेव वा ।
संन्यसेदुभयभ्रष्टः स मुक्तिं नाप्तुमर्हति ।।२०।।

(मैत्रेय्युपनिषत् अ० २/१७ से २०)

अर्थ :— कर्म का त्याग यह संन्यास नहीं है, संन्यास की दीक्षा लेने से संन्यास नहीं होता है । जीवात्मा परमात्मा की एकता होना, यही संन्यास है । सब प्रकार की एषणाएं जिसको वमन किए, हुए भोजन के समान हैं और जो देहाभिमान रहित है, उसका संन्यास में अधिकार है । जब मन से सब वस्तुओं में वैराग्य हो, तब अधिकारी संन्यास धारण करे, नहीं तो वह पतित होता है । धन की इच्छा से, अन्न और वस्त्र की इच्छा से और प्रतिष्ठा प्राप्त होने के निमित्त जो संन्यास लेता है, वह दोनों लोकों से भ्रष्ट होता है और उसको मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है ।

मन्वादि स्मृतियों में प्रायः आश्रमक्रमानुसार सोलहवें संस्कार स्वरूप संन्यास का वर्णन है, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदों में ब्राह्मी स्थिति स्थापक आध्यात्मिक प्रबल संस्कारों से युक्त साधकों को सर्ववासनात्मक जगत को भावनात्मक रूप से एवं तद्भावना प्रयोगात्मम समस्त त्याग रूप वैराग्य को धारण करते हुए जीव का लक्ष्य स्वरूप ब्राह्मी स्थिति में स्थित होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। यह आश्रम क्रम के अनुसार संस्कार नहीं है, अपितु वैराग्य पूर्वक त्याग है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा है :—

सर्वधर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज।

(श्रीमद्भगवद्गीता १८/६६)

सर्व धर्मों को अर्थात् समस्त कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा की ही अनन्य शरण को ही प्राप्त हो।

इस प्रकार इस भगवद्वाणी में 'सर्व धर्मान् परित्यज्य' यह अंश समस्त अविद्या रूप कारण सहित कार्य (प्रपंच) एवं तद्वासनादि के त्याग का संकेत करता है और 'मामेकं शरणं व्रज' यह समस्त त्याग रूप संन्यास के लक्ष्य का संकेत करता है।

सदाचारः

सदाचार की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए एक विद्वान् ने संकेत किया है :—

"जिस प्रकार वेद और स्मृतियाँ धर्म के विषय में प्रमाणिकता उत्पन्न करती हैं। उसी प्रकार जीव की परिवर्तित परिस्थितियों में, वास्तविक धर्म की खोज में शिष्टों के व्यवहार हमें आवश्यक कसौटी प्रदान करते हैं अर्थात् शिष्टों के आचार से यह प्रकट हो जाता है कि हमारा कार्य शास्त्र विहित है या नहीं? प्राचीन लेखकों का यह सिद्धान्त था कि स्मृतियाँ वेदों के उन भागों पर आधारित हैं, जो पहले थे किन्तु अब नहीं प्राप्त होते। उसी प्रकार शिष्टों के आचार भी वेदों के उन भागों पर आधारित हैं, जो अब नहीं उपलब्ध हैं। (देखिए आप०ध०सू० १/४/१२/८, १०-१३)

[धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-२, द्वारा वी० पी० काणे पृष्ठ संख्या ९५३]

महापुरुषों के शिष्टाचार के आधार पर ही त्रिदण्डयुक्त सुलभा का लिङ्ग संन्यास भी प्रमाणित सिद्ध हो जाता है क्योंकि सुलभा जनक संवाद काल से लेकर आज दिन तक किसी शिष्ट महापुरुष ने किसी भी प्रकार की उसके संयास के विषय में कोई भी टीका टिप्पणी उपस्थित नहीं की। किसी प्रकार का कोई भी आक्षेपात्मक खण्डन नहीं मिलता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में मैत्रेयी का वैराग्य देखकर जो याज्ञवल्क्य जी ने उनको [मैत्रेयी को] उपदेश दिया है, वह उपदेश और उस पर भगवान शंकराचार्य जी का भाष्य भी दृष्टव्य है-

"स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।"

[बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/५]

अर्थ :-उन्होंने कहा, अरी मैत्रेयि ! यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है । स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया होती है ।

इसी का भाष्य देखें-

"स होवाच-अमृतत्व साधनं वैराग्यमुपदिदिक्षुर्जायापतिपुत्रादिभ्यो विरागमुत्पादयति तत्संन्यासाय ।" [भगवान शंकराचार्य]

अर्थ :—अमृतत्व के साधन वैराग्य का उपदेश करने की इच्छा मे याज्ञवल्क्य जी स्त्री, पति एवं पुत्रादि से, उनका त्याग करने के लिए वैराग्य उत्पन्न कराते हैं।

इस याज्ञवल्क्य के उपदेश का पात्र कौन है ? उपदेश क्या है ? और किधर के लिए संकेत कर रहा है जैसा कि भाष्यकार ने भाष्य करते हुए 'संन्यासाय' लिखा है । स्त्री रूप में उपस्थित मैत्रेयी के लिए ।

आगे पुनः धर्म सम्राट अभिनव शंकराचार्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज का एक गद्यांश पढ़ें और दुनिया के बुद्धिजीवी विद्वान् उसका तात्पर्य निकालें, जो कि वृन्दा के पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध में समाधानात्मक रूप से लिखा गया है-

"वस्तुतः पातिव्रत धर्म से भी विष्णु सम्बन्ध को ही तो प्राप्त करना है । सारांश ये निकला कि पहले वृन्दा भगवदीया ही थी, गोलोक धाम निवासिनी थी, दुर्दैववशात् जालन्धर भोग्या हो गई थी। यह वृन्दा प्राणियों की बुद्धि है, वास्तव में इसका सम्बन्ध मुख्य साक्षी से ही होना चाहिए । इसलिए बुद्धि का पूर्णतम पुरुषोत्तमाकाराकारित होना यही स्वाभाविक सफलता है । दुर्दैव यह है कि वह जगदाकाराकारित हो रही है । जीवों को बुद्धि मिली है भगवद् प्राप्ति के लिए, सांसारिक निर्णयों के लिए नहीं। इसलिए इसकी परम सफलता इसी में है कि भगवत् सम्बन्ध सुस्थिर हो, वहाँ भगवदभिव्यक्ति हो । यह प्रभु की महान कृपा है कि दैत्य सम्बन्ध छुड़ाकर उस दैत्य भोग्या वृन्दा को भगवद्भोग्या बनायें । यही स्थिति संसार में भी है । बुद्धियों पर शैतान का अधिकार है या भगवान का ।

साधारण बुद्धि शैतान भोग्या हो गयी है, तभी तो वह पाप, ताप दम्भों में लगायी जाती है। उसका फल ही है नाना योनियों में भटकते रहना। वास्तव में घट उत्पन्न होते है आकाश से परिपूरित आता है; जल दुग्ध या मृतिका से पीछे परिपूरित होता है। इसी प्रकार बुद्धि उत्पन्न होते ही आकाशोपम परमात्मा से ही भरपूर हुई, इसमें प्रपंच जो भरा है वह आगन्तुक है। तथापि बुद्धि इस प्रपंच की पतिव्रता हो गयी है। एक क्षण के लिए भी उसमें से प्रपंच नहीं निकलता। यही बुद्धि का दृश्य में राग, प्रीति पातिव्रत हठ हो गया। अब पूर्णतम पुरुषोत्तम ही कृपा करें, हठात् यदि दैत्य सम्बन्ध छुड़ायें, तभी कुछ हो, वह स्वयं तो निवृत्त होती नहीं। इसी बुद्धि के बल से ही यह दैत्य संसार में अनेक अनर्थ बढ़ा रहा है। कौन इस दैत्य का वध करे ? सब देवाधिदेव परेशान हैं। जब प्रभु बलात् इस दैत्य के संसर्ग को छुड़ाए; नकली पातिव्रत्य बिगाड़े; तभी कल्याण हो। असली पति भगवान ही हैं क्योंकि शुरू में वह बुद्धि भगवदाकाराकारित होकर पीछे सर्वाकाराकारित होती है।"

[भक्ति सुधा 'वेणुगीत' पृष्ठ ४९०]

जैसा कि ऊपर गद्यांश में पू० श्री स्वामी करपात्री जी ने सकेत करते हुए स्पष्ट लिखा है, 'असली पति भगवान ही है।' इसी असली पति को प्राप्त करने के लिए ही यह मानव जीवन है, वह चाहे पुरुष रूप में हो और चाहे स्त्री रूप में हो। मुख्यत: जिसको भगवत्प्राप्ति करनी है, इस संघात में वह-

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीर मादत्ते तेन तेन स युज्यते ।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् ५/१०)

अर्थ:— यह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है और न यह नपुंसक ही है। वह जिस जिस शरीर को ग्रहण करता है, उस उससे सम्बद्ध हो जाता है।

इसके मुख्य पथ प्रदर्शक शास्त्र और गुरू हैं। इस प्रकार शास्त्र और गुरू के बताए हुए मार्ग को ग्रहण करके परात्पर तत्त्व का साक्षात्कार करे और प्रवृत्ति मार्ग के प्रमुख सम्बन्ध इसी महालक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपकरण मात्र हैं। जैसे—पुत्र के लिए माता—पिता, पत्नी के लिए पति, शिष्य के लिए गुरू और प्रजा के लिए राजा परम लक्ष्य को उपलब्ध कराने के लिए महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। उपकरण करण् का पूरक होता है, सहयोगी होता है, लक्ष्य को प्राप्त कराने में सहायक होता है। जैसे—किसी रूप के देखने के लिए नेत्र करण हैं और चश्मा उपकरण है। करण जब प्रत्यक्ष (सीधे) कार्य नहीं कर पाता तब वह उपकरण

का आश्रय लेता है, जो करण का सहयोगी होता है। करण को अपने कार्य को सम्पन्न करने में सहयोग देता है, करण का विरोधी नहीं। फिर उस उपकरण के माध्यम से करण द्वारा कर्ता अपने कार्य को सम्पन्न करता है। यह है उपकरण का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य।

ऐसे ही जीवात्मा कर्त्ता है, शरीर करण है, प्रमुख संबंधी (पति, पिता, माता, गुरू और राजा) उपकरण हैं। सम्पूर्ण विक्षेप रहित परमात्म पद लक्ष्य है। अब यदि कोई प्राणी (जीवात्मा) अपने शरीर रूपी करण से प्रत्यक्ष परमात्म दर्शन करने में असमर्थ है, तब वहाँ पर माता-पिता, पति, गुरू और राजा के रूप में उपस्थित है उपकरण। फिर इन उपकरणों के माध्यम से यह जीवात्मा समस्त संसार कलना रहित परमात्म पद को प्राप्त करता है। यह है जीवन का उद्देश्य और यह है शास्त्र का तात्पर्य। यह नहीं है कि करण और उपकरण ६३ बन जायें और यह भी नहीं कि परस्पर ३६ बन जायें और यह भी युक्ति युक्त नहीं होगा कि ६६ बन जायें अपितु ३३ बनना है। तात्पर्य यह है कि पति पत्नी आदि का ६३ बनना आपस में आसक्त होना है। ३६ बनना आपस में विरोध होना है। ६६ बनना माने उल्टा घूमना है संसार की ओर घूमना और ३३ बनना परमात्मा की ओर प्रवृत्त होना है। पति, गुरू, पिता आदिक परमात्मा का चिन्तन करें, उनके आश्रित जो हैं वे उनका अनुसरण करें जलन्धर की भाँति लक्ष्य के विरोधी न बनें।

करण उपकरण में इतना न चिपक जाय कि कर्ता का लक्ष्य उपकरण ही बन जाये और प्रमुख लक्ष्य विस्मृत हो जाये। तथा उपकरण अवांछनीय ढंग से करण पर इतना हावी न हो जाये कि करण ही उसकी भोग्य सामग्री बन जाये। यह उपदेशक (पथ प्रदर्शक) उपकरण का भी कर्तव्य नहीं है कि किसी भ्रामक स्थिति को अपने उपदेशों से पुष्ट करता रहे। यदि अविद्या जन्य भ्रम (अध्यास) को वह अपने उपदेशों से और पुष्ट करता है, तो ऐसे भ्रान्त उपदेशक [पथ प्रदर्शक] उपकरण के लिए शास्त्र की कठोरता पूर्वक आज्ञा है :—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥

(वा० रा० २/२१/१३)

अर्थ:— अभिमानी, कार्य अकार्य को न जानने वाले और उल्टे मार्ग पर चलने वाले गुरू को भी दण्ड देना आवश्यक होता है।

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेत मृत्युम्॥

(श्रीमद्भागवत ५/५/१८)

समुपेतः संप्राप्तो मृत्युः संसारो येन तम् । ततो भक्ति मार्गोपदेशेन (परमार्थ मार्गोपदेशेन) यो न मोचयेत्स गुर्वादिर्न भवतीत्यर्थः । यद्वा यस्तं मोचयितुं न शक्नुयात्स तस्य गुर्वादिर्न स्यादिति निषेधः । ततश्च पिता न स्यादिति पुत्रोत्पत्तौ यत्नो न कार्यं इत्यर्थः । दैवं देवता न स्यादिति पूजा न ग्राह्येत्यर्थं । एव मन्यदपि दृष्टव्यम् ।

(आचार्य श्रीधरः)

श्लोकार्थ :— जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद्भक्ति (परमार्थ विज्ञान, ब्रह्मविज्ञान) का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता वह गुरू गुरू नहीं हैं, स्वजन स्वजन नहीं हैं । पिता पिता नहीं है । माता माता नहीं । इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है ।

(श्रीमद्भागवत ५/५/१८)

इस प्रकार शास्त्र प्रमाण और महापुरुषों के संकेतों से सर्व त्याग पूर्वक परमात्म चिन्तन करना रूप संन्यास स्त्रियों के लिए सिद्ध है । पूज्य श्री करपात्री जी ने तो यहाँ तक संकेत किया है :—

"जो मार्ग शास्त्रोक्त न भी हो फिर भी शास्त्र के अविरुद्ध हो, तो काम में लाया जा सकता है ।"

(भक्ति सुधा पृष्ठ नं० ६६२)

शिष्टानुमोदित व्यवहार (जीवन यापन आदि) के ऊपर किसी प्रकार का अभियोग नहीं किया जा सकता है ।

ॐ उपशम्

चौथा प्रमाण

स्वस्य च प्रियमात्मनः

विवेक पूर्ण संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा भी धर्म का मूल है । अपने अन्तः करण की प्रसन्नता । विश्व में बाल से लेकर वृद्ध पर्यन्त, चींटी से लेकर ब्रह्मा तक ऐसा कोई नहीं है जिसको कि किसी भी शुभ कर्म में अथवा भगवच्चिन्तन में आन्तरिक प्रसन्नता न होकर भय, विक्षेप चिन्तादिक लगें । जैसे चोरी आदि दुर्गुणों में हृदय की दशा होती है । संसार में कोई भी प्राणी यदि कुपथ पर कदम बढ़ावे तो निश्चित ही उसकी आन्तरिक स्थिति सामान्य नहीं रहेगी, परन्तु ऐसा सत्पथ में नहीं होता । यह सबका अनुभव है तथा चाहे जहाँ प्रयोग करके देख लिया जाय ।

"सर्व त्याग पूर्वक अखण्ड परमात्मचिन्तन करने वाली नारियों का उदाहरण तथा उनके प्रति शिष्टजनों का व्यवहार"

और श्री स्वामी जी ने कहा कि "वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण रामायण, महाभारत में तो कहीं स्त्रियों के संन्यास का उल्लेख नहीं है, आज तक किसी ने संन्यास लिया नहीं। सुलभा ने भी अन्त में यही कहा, मेरे योग्य पति मुझे नहीं मिला इसीलिए मैंने विवाह नहीं किया।"

ऊपर आपने जितने ग्रन्थ गिनाये हैं, उन्हीं में एक महाभारत भी है। उसी महाभारत में सुलभा का त्रिदण्ड सन्यास भी उल्लिखित है, जिसको किसी भी प्रकार से असत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। उस सुलभा का नाम लेते हुए आपने भी कहा ;

"सुलभा ने भी अन्त में यही कहा कि मेरे योग्य पति मुझे नहीं मिला इसलिए मैंने विवाह नहीं किया।"

मैं कहता हूँ, सुलभा ने विवाह नहीं किया, न करती आजीवन अपने घर में रहती, अपने माता, पिता, भ्रातादि के साथ रहती। परन्तु संन्यास क्यों लिया ? फिर क्षत्रिया होते हुए त्रिदण्ड संन्यास लिया ? विवाह न करना एक अलग बात है और त्रिदण्ड युक्त संन्यास जो कि ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को नहीं मिलना चाहिए। वह उसने क्यों लिया और कैसे लिया ? इसके अतिरिक्त वह संन्यास त्रिदण्ड (तीन दण्ड), गैरिक वस्त्र, कमण्डलु अपने आप ही सब ले लिया अथवा किसी ने दिया ? यदि स्वयं ही लिया तो और अधिक अशास्त्रीय कार्य किया। एक तो संन्यास लेना अशास्त्रीय दूसरा अपने आप ! अगर किसी ने दिया तो दोनों ही देने और लेने वाले पातकी हुए। ऐसे शास्त्र निषिद्ध कर्म करने वालों को शिष्ट विद्वानों की सभा में, या घर में, या दृष्टि में किसी भी प्रकार का सम्मान नहीं मिलना चाहिए परन्तु ठीक इसके विपरीत अध्यात्म शास्त्र और वर्णाश्रम विधान के जानने वाले महाराजा जनक की सभा में जब सन्यासिनी सुलभा पहुँची तो उन्होंने सुलभा के साथ बड़ा ही शिष्ट व्यवहार किया। तदनन्तर उसका स्वागत करके राजा ने उसको सुन्दर आसन समर्पित किया और पैर धुला कर उसका यथोचित् पूजन करने के पश्चात् उत्तमोत्तम अन्न देकर उसे तृप्त किया।

अब विचार करें यदि स्त्री का संन्यास शास्त्रीय निषिद्ध और गर्हित होता तो राजा जनक उपरोक्त प्रकार से संन्यासिनी सुलभा का सम्मान न करके श्री स्वामी जी की भाँति अनादर करते हुए पूँछते।

"माई ! तुझे नरक में जाने का रास्ता किसने बताया है ?"

परन्तु ऐसे अशिष्ट वाक्य का प्रयोग नहीं किया। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी महात्मा, विद्वान् व्यवहार कुशल, अध्यात्मविद् शिष्ट महापुरुष के मुँख से किसी स्त्री सन्त के लिए ऐसे शब्द नहीं निकल सकते हैं। विद्वानों ने संन्यासिनी सुलभा का सम्मान किया इसलिए 'स्त्री संन्यास' शास्त्र निषिद्ध नहीं है। ध्यान रहे-- शिष्ट महापुरुषों का आचरण भी प्रमाण है। ओह ! सन्त हृदय भगवद्भक्तों के लिए कैसा होता है ?

तुलसी जाके मुखन से धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पानही, मेरे तन को चाम॥

यह है सन्त हृदय ! ऐसे ही सन्तों से देश और समाज को शान्ति मिल सकती है। अब जरा उनको देखो जिनके ये सन्त हैं-

'प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं' यह है भगवान के हृदय की विशालता। इसीलिए सन्त प्रवर गोस्वामी तुलसी दास जी ने दिल खोलकर घोषणा की है- 'प्रभु मूरति कृपा मयी है' ॐ

परन्तु हमारे पुरीपीठाधीश्वर श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज देश और समाज को क्या दे रहे हैं ? किस विधि से यत्र-तत्र-सर्वत्र कलह और अशान्ति के बीज बो रहे हैं, आपस में रागद्वेष करवा रहे हैं। इसका निर्णय देश के सन्त, विद्वान, विचारकुशल बुद्धिजीवी निष्पक्ष मानव ही करेंगे। और अन्तिम निर्णय तो नारायण के हाथ में ही है। जहाँ तक स्त्रियों के सन्त होने में संन्यास (सम्पूर्ण वासनाओं के त्याग पूर्वक भगवद् आराधना स्वरूप संन्यास) प्रमाण की बात है उस विषय में संन्यासिनी सुलभा का जीवन उदाहरण स्वरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से बढ़कर और कौन सा ज्वलन्त प्रमाण होगा ? यह महाभारत के शान्ति पर्व का ३२०वां अध्याय प्रक्षिप्त तो नहीं है।

अथवा विद्वानों, ज्ञानियों, भक्तों, धर्माचार्यों की परम्परा में किसी ने अप्रमाणित मान कर खण्डन किया है।

अथवा श्रेष्ठ ज्ञानियों में से एक जो राजा जनक थे उन्होंने ही उसके संन्यास और त्रिदण्ड पर कोई आक्षेप उठाया हो ?

अथवा जनक की सभा के किसी विद्वान ने घृणास्पद् आक्षेपात्मक कोई शब्द कहा हो ?

अथवा भीष्म पितामह ने जो युधिष्ठिर को उत्तर देते हुए, यह प्रसंग उपस्थित किया था उन्होने ही यदि सुभला के त्रिदण्ड युक्त संन्यास पर आक्षेप उठाया हो?

अथवा श्री वेदव्यास जी जो महाभारत के रचयिता हैं, उन्होंने ही अगर उसके संन्यास पर आपत्ति प्रकट की हो ?

अथवा वर्तमान समय के किसी सम्माननीय महापुरुष विद्वान् ने सुलभा के

संन्यास का खण्डन किया हो तो आप श्री स्वामी जी महाराज बताने की कृपा करें।

अथवा सत्य को परमात्मा को, धर्म को सत्य सत्य साक्षी करके बहुत गहरे में यदि आपका अन्तरात्मा सुलभा के त्याग, तपस्यापूर्ण संन्यास जीवन को दूषित कर रहा हो तो वह भी सप्रमाण व्यक्त करें। परन्तु ध्यान रहे- जिस वेष में हैं और जिस गद्दी पर हैं तदनुसार इतना ही संकेत हम करते हैं कि सत्य और धर्म को साक्षी करके ही बोलें; पक्ष विपक्ष से प्रभावित होकर नहीं।

यदि यह उपरोक्त सुलभा का संन्यास देश विदेश के शिष्ट महापुरुषों के द्वारा अनुमोदित है तो स्त्री संन्यास निष्पक्ष एवं निर्विवाद सिद्ध है।

अगर स्वामी जी महाराज इसका खण्डन कर सकें तो निष्पक्ष होकर सप्रमाण लिखित रूप में इसका खण्डन करें।

ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी

महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने अपने गृहस्थाश्रम में रहते हुए परिव्राजक जीवन ग्रहण करने का जब निश्चय किया उस समय पर मैत्रेयी और कात्यायनी नामक अपनी दोनों पत्नियों को बुलाकर सम्पूर्ण सम्पत्ति का दो भागों में बटवारा करने के विचार से कहा, अरी मैत्रेयि ! मैं इस स्थान (गृहस्थाश्रम) से उठकर संन्यास आश्रम में जाने वाला हूँ। अतः इस कात्यायनी के साथ तुम्हारा बटवारा कर दूँ। इस पर मैत्रेयी ने कहा:—

"सा होवाच मैत्रेयी ! यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरण-वतां जीवितं तथैव ते जीवित ँ स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति ।।२।।

[बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/२]

अर्थ:—उस मैत्रेयी ने कहा, 'भगवन ! यदि ये धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाये, तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ ?

याज्ञवल्क्य ने कहा, नहीं, भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है वैसा ही तेरा जीवन हो जायेगा। धन से अमृतत्व की तो आशा है नहीं।

"स होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।३।।

[बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/३]

अर्थ:-उस मैत्रेयी ने कहा, "जिससे मैं अमर नही हो सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी ? श्रीमान् ! जो कुछ अमृतत्व का साधन जानते हों, वही मुझसे बतलावें।"

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया

भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।..
..............आत्मा वा अरे दृष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥५॥

[बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/५]

अर्थ:—उन्होंने कहा, 'अरी मैत्रेयी ! यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता; अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है । स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया होती है ।...—.........—......अरी मैत्रेयी ! यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किए जाने योग्य है । हे मैत्रेयी ! इस आत्मा के ही दर्शन श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस सबका ज्ञान हो जाता है ।

इसी का भाष्य करते हुए भगवान शंकराचार्य ने लिखा है:

"स होवाच अमृतत्व साधनं वैराग्यमुपदिदिक्षुर्जाया पति पुत्रादिभ्यो विरागमुत्पादयति तत्संन्यासाय ।"

अमृतत्व के साधन वैराग्य का उपदेश करने की इच्छा से याज्ञवल्क्य जी स्त्री, पति एवं पुत्रादि से, उनका त्याग करने के लिए वैराग्य उत्पन्न कराते हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्टतम वैराग्यपूर्ण अध्यात्मविद्या का गम्भीर उपदेश याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी को दे करके परिव्राजक हो गये । इस विषय में जिसको देखना हो बृहदारण्यकोपनिषद् में देखें ।

तदनन्तर मैत्रेयी ने क्या किया ? इस विषय पर विशद् वर्णन आत्मपुराण के सातवें खण्ड [अध्याय] में वर्णन हैं । यथाः—

याज्ञवल्क्यो यथातद्वन्मैत्रेय्यपि चचारह ।
संन्यास लिङ्ग रहिताभुवमात्म स्वरूपिणी ॥

[आत्मपुराण अ० ७/५१७]

अर्थ:—अब मैत्रेयी के वृतान्त का निरूपण करता हूँ । हे शिष्य ! जैसे वह याज्ञवल्क्य मुनि ने चतुर्थ संन्यास आश्रम को धारण करके इस लोक में विचरण किया वैसे ही मैत्रेयी ने भी संन्यास लेकर विचरण किया । परन्तु इस विषय में इतनी विशेषता है कि याज्ञवल्क्य मुनि ने लिङ्ग संन्यास को धारण किया और मैत्रेयी ने अलिङ्ग संन्यास को धारण किया, तहाँ दण्ड ग्रहण पूर्वक जो संन्यास है वह लिङ्ग संन्यास है और दण्ड ग्रहण से बिना जो संन्यास है उसका नाम अलिङ्ग संन्यास है । इतनी ही विशेषता को छोड़कर दूसरे भिक्षाटनादिक बाह्य धर्म तथा शमदमादिक अन्तर्धर्म लिङ्ग संन्यासियों के और अलिङ्ग संन्यासियों के समान ही होते हैं ।

[स्वामी चिद्घनानन्द जी द्वारा अनुवादित]

मैत्रेयी सकलं त्वेतद्वेदयस्मात्ततोत्रसा ।

पत्यु: संप्राप्त विज्ञाना ब्रह्मचर्यादि संयुता ।
चतुर्थाश्रम लिङ्गेन शून्या भूमिं चचारसा ।
[आ० पु० अ० ७/५३८]

उस सम्पूर्ण मर्यादा को जानती हुई वह ब्रह्मवेत्ता मैत्रेयी दण्डग्रहणपूर्वक लिङ्ग संन्यास को नहीं धारण करती भई किन्तु ब्रह्मचर्यादि साधन पूर्वक अलिङ्ग संन्यास को धारण करके वह मैत्रेयी याज्ञवल्क्य मुनि की भाँति इस लोक में विचरण करती भई । तहाँ उस मैत्रेयी से याज्ञवल्क्य मुनि विषय एक दण्ड ग्रहण मात्र की विशेषता रही । उस दण्ड ग्रहण रूप विशेषता को छोड़कर दूसरे शमदमादिक धर्म जैसे याज्ञवल्क्य मुनि में थे वैसे ही मैत्रेयी में भी रहे ।
(पू० श्री स्वामी चिद्घनानन्द जी द्वारा अनुवादित)

इस प्रकार मैत्रेयी का भी संन्यास सिद्ध है । गार्गी के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है । संध्या, ब्रह्मवादिनी विश्वपारा, वाक् आदि नारियाँ भी सम्पूर्ण ऐहिक सुखों से उपरत होकर महान् तपस्विनी रहीं । जिनका उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है । इनके अतिरिक्त और भी इतिहास पुराण तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में तपस्विनी नारियों का दर्शन मिलता है । जो कि इस प्रकार हैं :—

दक्षकन्या महातपस्विनी केतकी

केतकी ने विवाह नहीं किया और माता–पिता से अनुमति लेकर हिमालय के शिखर पर जाकर तप करना आरम्भ कर दिया ।
(नारी अंङ्क पेज नं० ५२४ पर)

वेद व्यास माता, महामती सत्यवती

संसार के समस्त सम्बन्धों को त्यागकर सत्यवती के तपस्या करने का उल्लेख महाभारत में आया है । अन्त में उनका शरीर तपश्चर्या में ही समाप्त हुआ । तप के लिए वह अकेली ही नहीं अपितु उनके साथ उनकी पुत्रवधू अम्बिका भी गई । वेदव्यास जी ने अपनी माता से कहा—

गच्छत्वं योगमास्थाय युक्तावस तपोधने ।
(महाभा० आदि पर्व १२८/८)

हे तपोधने । अब तू योग का आश्रय लेकर योगिनी बनकर तपश्चर्या में रत हो जा । अन्त में :—

ताः सुघोरं तपस्तप्त्वा देव्यो भरतसत्तम् ।
देह त्यक्त्वा महाराज गतिमिष्टांययुस्तदा ।।
(महाभा० आदि पर्व १२८/१३)

अर्थ :— हे भरतवंशोत्पन्न महाराज ! वे दोनों देवी घोर तप करके देह परित्याग के अनन्तर अपनी इष्ट गति को प्राप्त हुईं ।

माता कुन्ती

पाण्डवों की माता कुन्ती ने भी अपने जीवन को अन्त में तप करते हुए ही पूर्ण किया । जिस समय वह महान् तप करती हुई अरण्य निवास कर रहीं थीं उसी समय जंगल में आग लग जाने से उनका शरीर उसी दावाग्नि में भस्मी भूत हो गया । उनकी तपश्चर्या विचित्र ही थी । यथा—

"गान्धारी तु जलाहारा कुन्ती मासोपवासिनी ।"

(महाभा० आश्रम० ३७/१४)

परिव्राजिका शंकरा

व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य (२, पृ० १००) में "शंकरा" नामक परिव्राजिका का उल्लेख किया है ।

परिव्राजिका कौशिकी

कलिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र में परिव्राजिका (संन्यासिनी) कौशिकी का उल्लेख किया है ।

आत्रेयी

सुलभा जी के समान ब्रह्मविद्या की खोज में एक ऋषि आश्रम से दूसरे ऋषि आश्रम में पर्यटन करने वाली रामायण काल की आत्रेयी का भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में बड़ा सजीव चित्रण किया है । आत्रेयी कहती हैं–

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे, भूयांस उद्गीथविदोवसन्ति ।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां, बाल्मीकि पार्श्वादिह पर्यटामि ।।

(उत्तर राम चरित २/३)

अर्थः– इस प्रदेश में 'अगस्त्य'–प्रभृति अनेक ब्रह्मदेवता (उद्गीथविद्) ऋषि रहते हैं । उनसे वेदान्तविद्या प्राप्त करने के लिए (पढ़ने के लिए) मैं वाल्मीकि जी के पास से यहाँ आ रही हूँ ।

परिव्राजिका संघमित्रा

सुप्रसिद्ध दिग्विजयी सम्राट अशोक महान की पुत्री 'संघमित्रा ।' महावंश नामक बौद्ध ग्रन्थ में संघमित्रा का उल्लेख मिलता है । महावंश का लेखक लिखता है कि संघमित्रा भिक्षुणी ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था । सिंहल में रहते समय धर्म की

उन्नति के लिए उसने बहुतेरे पुण्य कार्य किये थे। अन्त में उसके शरीर के शान्त होने पर सिंहल के राजा ने बड़े ही आदर सत्कार पूर्वक तथा ठाट-बाट से उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की थीं।

सम्राट को इतिहासकारों ने 'महान्' पदवी से विभूषित किया परन्तु देवी संघमित्रा की महत्ता उससे कहीं बड़ी थी. सिंहल का इतिहास इसका साक्षी है। अपने महाराजाधिराज अशोक 'महान्' की कन्या देवी संघमित्रा के पवित्र और उन्नत जीवन का स्मरण करके आज भी हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है।

परिब्राजिका उत्पलवर्णा

यह एक धनिक वैश्य की कन्या थी। इस कन्या ने बालब्रह्मचारिणी रहते हुए संन्यास लिया था। यथा-'उत्पलवर्णा प्रव्रज्या' (संन्यास) लेकर धर्म ग्रन्थों के अध्ययन तथा ध्यान और समाधि साधन में लग गई। उसने ऋद्धियों को प्राप्त किया और जीवन में चमत्कार दिखलाए। भगवान तथागत ने उसे ऋद्धिमती के नाम से सम्बोधित किया।

सन्त आंडाल

इसी प्रकार दक्षिण भारत की परम्परा में आलवार सम्प्रदाय की आंडाल नाम की स्त्री (जन्म सं०७७३) अपनी भक्ति, त्याग, वैराग्य के लिए बहुत ही प्रसिद्ध हो गई हैं। उसके रचित पद द्रविण भाषा में 'तिरूप्पावइ' नामक पुस्तक में ग्रथित मिलते हैं।

महान विरक्त सन्त सहजोबाई

चरणदासी सम्प्रदाय के सन्त चरणदास (बि०स० १७६०-१८३९) की शिष्या सहजोबाई' थीं। वे न केवल सन्त ही थीं अपितु उनमें वह अद्भुत मेधा शक्ति थी जिसका परिचय उनकी कृति 'सहजोबाई की बानी सहज प्रकाश' से मिलता है।

महाविरागिनी, महानभगवद्भक्ता मीरा बाई

भक्ति और विरक्ति का साक्षात् अवतार बहन मीरा! इनको मैं क्या कहूँ? तपस्विनी कहूँ? संन्यासिनी कहूँ? भक्त कहूँ? भक्ति का साक्षात् अवतार कहूँ? देश का जो बच्चा बच्चा इनसे परिचित है।

राणा ने जब हर प्रकार से उनके मार्ग में अनेकों विघ्न उपस्थित किये तब मीरा ने तुलसीदास को यह पत्र लिखा:-

स्वस्ति श्री तुलसी गुण भूषण दूषण हरण गोसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ, अब हरहु शोक समुदाई॥

घर के स्वजम हमारे जैते सबनि उपाधि बढ़ाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेश महाई ।।
सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई ।
बालपनें ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मिताई ।।
मेरे मात पिता सम तुमहो, हरिभक्तन सुखदाई ।
मोको कहा उचित है करिवो, सो लिखिए समुझाई ।।

पूज्य पाद श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने उत्तर में यह पाद लिखकर भेजा–

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
सो छाड़िए कोटि वैरी सम ज्द्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु भरत महतारी ।।
गुरु वलि तज्यो कन्त ब्रजबनितनि भे मुद मंगलकारी ।।
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।।
तुलसी सो सब भाँति परम प्रिय पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो ।।

इस पत्र को प्राप्त करके मीरा ने घर छोढ़ वृन्दावन जाने का निश्चय कर लिया और अपने निर्णयात्मक निश्चय के अनुसार ही आगे कदम उठाए । विशेष ज्ञान के लिए उनका पूरा जीवन चरित्र पढ़ें । क्या विचित्र मीरा के हृदय द्रावक शब्द हैं:- 'मेरे मात पिता सम तुम हो' तुलसीदास जी को अपना क्या समझ कर लिखा था ? और वहीं उसके प्रत्युत्तर में संसार विमुख महान् विरक्त सन्त तुलसी दास जी ने उनके आध्यात्मिक जोवन में कितना महान् उत्साह वर्धक सहयोग दिया है । यह है सन्त का हृदय । यदि कोई संसारी रंग में रंगा हुआ वेष मात्र का सन्त होता तो वह उन्हें उसी नारकीय जीवन में घुट-घुट कर मरने की सलाह देता । कहता राणा को केवल प्रसन्न करो, जैसे भी वे प्रसन्न होवें ।

महातपस्विनी श्री राना बाई–

रानाबाई के पिता का नाम– जालम जाट, ग्राम–हरनामा मारवाड़ था । गुरू का नाम सन्त खोजी जी था । इन्होने आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर विरक्त अवस्था में भगवच्चिन्तन किया ।

परम तपस्विनी लल्लेश्वरी जी

लल्लेश्वरी जी का जन्म स्थान काश्मीर था । वह ब्राह्मण कन्या विवाह होने के कुछ दिन बाद महाविरक्त हो गईं । वह पूर्ण रूपेण परमहंस अवधूत अवस्था

में रहतीं थीं । गार्गी की तरह कभी कभी वे दिगम्बर भी रहतीं थी । उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में आशातीत उन्नति की । सूफी सन्त शासहमदान उनके गुरू थे ।

महातपस्विनी कान्हू पात्रा

कान्हू पात्रा का जन्म मंगल वेडा नामक स्थान में हुआ था । इनकी माता का नाम श्यामा वेश्या था । यह जन्म से ही महान उच्चकोटि के भक्ति के संस्कारों से युक्त थीं । वाल ब्रह्मचारिणी रह करके अपने को भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया । यह अपना घर छोड़कर, महाविरक्त होकर पनढरपुर चली गई फिर आजीवन वहीं रहीं और अन्त में पनढरी नाथ विट्ठल जी के मन्दिर में ही उसकी देह अचेतन हुई और उससे एक विचित्र ज्योति निकलकर भगवान की ज्योति में मिल गई, अचेतन देह भगवान के श्री चरणों पर आ गिरी। कान्हू पात्रा की अस्थियाँ (शव) मन्दिर के दक्षिग द्वार पर गाड़ी गई । मन्दिर के समीप कान्हू पात्रा की मूर्ति खड़ी-खड़ी आज भी पतितों को पावन कर रही है ।

महान् तपस्विनी भक्तिमती श्री जनाबाई

जनाबाई का जम्म गोदावरी तीर पर गगाखेड़ नामक स्थान में एक शूद्र कुल में हुआ था । इनके पिता का नाम दमा और माता का नाम करूड था । इनके वचपन में ही माता का देहान्त हो गया था । एक बार इस छोटी सी कन्या को इसके पिता इसे संग लेकर पंढरपुर गये । वहाँ पर श्री विट्ठल भगवान का दर्शन करके इस छोटीं सी वालिका के ऊपर ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ा कि उसने पुन: घर वापस जाने से इम्कार कर दिया । पिता ने हर प्रकार मे जब देख लिया कि जना के हृदय में भगवन्मिलन की सच्ची लगन है, तब उसने ममता का पाश तोड़कर अपनी इस सात वर्ष की कन्या को श्री नामदेव जी के पिता श्री दामासेट के घर काम-काज करने के बहाने रखकर भगवद्भजन करने के लिए छोड़ दिया।

क्रमश: वह बालिका भगवच्चिन्तन में इतनी आरूढ़ हुई कि नदी से पानी लाते समय और आँटा पीसते समय स्वय भगवान मूर्तिमान होकर जना के साथ काम करते थे । जनाबाई आजीवन अविवाहिता रही । ससार के सभी आकर्षणों से उपरत रहती हुई अन्त में भगवान विट्ठल के ही श्री चरणों में अपनी जीवन लीला समाप्त की ।

महातपस्विनी भक्तिमती करमयतीबाई

जयपुर के अन्तर्गत खंडेला नामक एक स्थान है । पडित परशुराम जी खंडेला राज्य के कुल पुरोहित थे । करमयतीवाई इन्हीं भाग्यशाली परशुराम जी की सद्गुणवती पुत्री थीं । पूर्व संस्कार वश जन्म से ही विचित्र आध्यात्मिक संस्कार

इनमें थे । नाम मात्र को इनका विवाह हुआ था । जिस दिन इनको ससुराल के लिए विदा होना था उसके पूर्व रात्रि में इन्होंने सदैव के लिए अपना घर छोड़ दिया क्योंकि विवाह के पूर्व ही अपने जीवन पुष्प को भगवान के श्री चरणों में चढ़ा चुकी थीं । करमयतीबाई ने बड़े ही त्याग भाव से वृन्दावन में निवास किया । उनका मन क्षण-क्षण में श्रीकृष्ण स्वरूप का दर्शन करके मतवाला बना रहता था उनकी आँखों पर तो सदा वर्षा ऋतु छायी रहती थी। इस प्रकार परमतप करते-करते अन्त में इस तपस्विनी देवी ने वहीं देह त्याग कर गोलोक की शेष यात्रा की ।

परम तपस्विनी भक्तिमती श्री कर्मठीबाई

कर्मठीबाई का जन्म राजस्थान के बागर नामक ग्राम में हुआ था । यह अपने पिता पंडित श्री पुरूषोत्तम जी की इकलौती पुत्री थीं । यह विवाहो-परान्त ही विधवा हो गईं । कुछ दिन बाद वे सब ओर से विरक्त होकर श्रीवन आ गईं । श्रीवन आने पर करमठी ने महाप्रभु श्री हितहरिवंशचन्द्र जी से वैष्णवी दीक्षा ली एवं अखण्ड भगवदाराधना में लग गईं । उनके चित्त की समस्त वासनाएं क्षीण हो गईं और वे कर्त्तृत्वाभिमान से रहित होकर भक्ति के किसी गम्भीर समुद्र में डूब गईं—सीधे शब्दों में गुरू कृपा से वे एक सिद्ध सन्त हो गईं । अन्त में वहीं भगवत्स्वरूप में लीन हो गईं ।

बालब्रह्मचारिणी महान भगवद्भक्ता गंगा-जमुनाबाई

महान सन्त गोस्वामी श्री हितहरिवंशचन्द्र जी महाराज इन दोनों के गुरू थे । नौ-नौ वर्ष की अवस्था में ही इन दोनों बालिकाओं का अपने कुटुम्ब से सम्बन्ध छूट गया था अखण्ड भगवच्चिंतन करते हुए इन दोनों बाल ब्रह्मचारिणियों ने परम सिद्धि को प्राप्त किया । अन्त में श्री वृन्दावन धाम में अपनी जीवन लीला पूर्ण किया ।

इस प्रकार भारत वसुन्धरा पर अनेकों तपस्विनी, ब्रह्मवादिनी बालब्रह्मचारिणी नारियां हुई हैं और भविष्य में होती रहेंगी । उपरोक्त तपस्विनी नारियों का पुस्तक के कलेवर को बढ़ जाने के भय से केवल नाम मात्र का परिचय दिया गया है । अगर भगवत्कृपा रही तो भविष्य में 'भारत की तपस्विनी नारियाँ" नामक पुस्तक ही स्वतन्त्र रूप से लिखी जायेगी जिसमें तपस्विनी नारियों का विशेष वर्णन होगा ।

उपरोक्त तपस्विनी नारियों के ऊपर यदि किसी महापुरुष ने अंगुली उठाई हो, इनके जीवन आदर्श का खण्डन किया हो, किसी ने कोई अभद्र शब्द इनके लिए प्रयोग किया हो, या समाज इनको हेय दृष्टि से देखता हो, या इन्हें नरकादि की यातनाएं प्राप्त हुई हों, या भगवान के रोष की पात्रा बनी हों तो निश्चित

ही स्वामी जी महाराज लिखित रूप में सप्रमाण उत्तर देने की कृपा करें। ॐ

ध्यान रहे—सर्वस्व त्याग करके भगवान की शरण लेने वाले प्राणी का वह चाहे जिस किसी भी जाति, लिङ्ग अथवा योनि का हो कभी भी अकल्याण नहीं होता। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने स्वयं ही अपने श्रीमुख से घोषणा की है-

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।
[श्रीमद्भगवदगीता अध्याय ६/४०]

अर्थ:—हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में (और) न परलोक में ही नाश होता है क्योंकि हे प्रिय ! कोई भी शुभ कर्म करने वाला अर्थात् भगवदर्थ कर्म करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्थितोहि सः ।।
[श्रीमद्भगवदगीता ९/३०]

अर्थ:-यदि (कोई) अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को [निरन्तर] भजता है। वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।।
[श्रीमद्भगवदगीता ९/३१]

अर्थ:—इसलिए वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है [और] सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन [तू] निश्चय पूर्वक सत्य जान [कि] मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

यह भगवान की घोषणा ध्यान से पढ़ें 'न मे भक्तः प्रणश्यति' मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। पुनः देखें-

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्या स्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।
[श्रीमद्भगवदगीता अ० ९/३२]

अर्थ:-क्योंकि हे पार्थ ! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई होवें वे भी मेरी शरण होकर [तो] परम गति को [ही] प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार जो भगवत् शरणापन्न हो चुके हैं—'तस्यकार्यं न विद्यते' इति 'नैवाऽस्ति किञ्चित्कर्तव्यम्' 'उसका कार्य विद्यमान नही है' और इसका कुछ कर्तव्य नहीं हैं'।

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलै सर्वाऽपि दत्ताऽवनि-
यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः ।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।।
( )

अर्थः जिसका मन एकक्षण के लिए भी ब्रह्मविचार में स्थिरता को प्राप्त हो गया उसने समस्त तीर्थों में स्नान कर लिया. सारी पृथ्वी का दान कर दिया; सहस्रों यज्ञ कर लिए, समस्त देवताओं का पूजन कर लिया, संसार से अपने पितरों का उद्धार कर दिया और तीनों लोकों में वह पूज्य हो गया ।

इस पवित्र आध्यात्मिक स्थिति में पहुंचकर नारी गुरु पद भी प्राप्त करती है यथा-

साध्वी चैव सदाचारा गुरूभक्ता ज़ितेन्द्रिया ।
सर्वं मन्त्रार्थं तत्त्वज्ञा सुशीला पूजने रता ।।
गुरूर्योग्या भवेत्सा हि विधवा परिवर्जिता ।
स्त्रियो दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणा स्मृता ।।

[योगिनी तन्त्र]

अर्थः-साध्वी, सदाचारपरायणा, गुरूभक्तिशीला, जितेन्द्रिया, सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा; सुशीला और पूजनादि कार्यानुरक्ता इन समस्त गुण वाली स्त्री से दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं किन्तु 'विधवा' को छोड़कर । स्त्री की दीक्षा को अधिक शुभ कहा है । माता से दीक्षित होने से अष्टगुण फल अधिक मिलता है ।

स्त्रीगुरू की स्तुति के लिए शास्त्रों में स्तोत्र और कवच भी हैं । जिनको देखना हो वे 'मातृकाभेदतन्त्र' में देखें ।

अब मुझे उस भद्दे वाक्य का उत्तर देना पड़ेगा जिसको कि सोचने तक में मुझे लज्जा आती है । फिर भी कुछ लिखना तो पड़ेगा ही क्योंकि मुझसे "टू दि प्वाइन्ट' उत्तर माँगा गया है ।

जहाँ तक कि श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ ने यह कहा कि (स्त्रियों की ओर संकेत करते हुए) अगर तुम लोग बाबा बन जाओगी तो (पुरुषों की ओर संकेत करते हुए) यह सब बिचारे रण्डुए रह जायेंगे ।

उपरोक्त पंक्तियां जो स्वामी जी के श्रीमुख से स्रवित हुई हैं इनको पढ़कर समाज का कोई भी बुद्धिजीवी व्यक्ति अनुमान लगा सकता है कि हमारे धर्माचार्य की यह भाषा कितनी दार्शनिक, साहित्यिक एवं तार्किक है । नारी के प्रति कैसी परिमार्जित नीयत है । स्वयं के व्यक्तित्व गाम्भीर्य की क्या स्थिति है । कौन सी

समस्या हल करने के लिए नारी का उपयोग कर रहें हैं। किन सार्थक शब्दों का का प्रयोग कर रहे हैं।

'रण्डुवा' शब्द किन व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है महाराज श्री को यह भी नहीं ज्ञात है। उन्होंने जोश में आकर होश तो बिल्कुल ही गवाँ दिया जिससे कि अनुपयुक्त, अव्यवहारिक अशोभनीय शब्दों को बोलना प्रारम्भ कर दिया। इतना तो सभी को ही विदित है कि जिसकी पत्नी मर जाती है उसको रण्डुवा कहते हैं, अविवाहित को नहीं। यदि अविवाहित का आप सरीखा अर्थ किया जाय तो इसी अर्थ की चपेट में भीष्मपितामह आदि भी आजायेंगे।

इसके अतिरिक्त समस्त वाक्य में जिस उद्देश्य को सामने रखकर नारी जीवन का उपयोग करना चाहा, उससे किसी भी विचार कुशला नारी के हृदय पर कितना घोर बज्राघात होगा साथ ही वह यह सोचने के लिए विवश हो जायेगी कि क्या समाज में, मेरी इतनी ही उपयोगिता है ? क्या मेरा जीवन खिलवाड़ मात्र के लिए ही है ? इतना सोचने के बाद हमारे (पुरीपीठाधीश्वर) प्रति और हमारे कथन का समर्थन करने वालों के प्रति उनके अन्तःकरण में क्या प्रतिक्रिया होगी यह भी नहीं सोच सके। सत्य ही है– 'क्रोधात्भवति सम्मोहः' जिसका यह कुफल है कि मुखः से असमीचीन निकला।

आज हमारे समाज में महान् हिन्दू धर्म के प्रति और उनके व्याख्याताओं के प्रति जो अनास्था पनप रही है. तथा अनेकों लोग धर्मान्तरित हो रहे है उसके मूल में कुछ ऐसे ही व्याख्याताओं के व्यंग्य, हास्य घृणा, कटुता एवं अपमान युक्त शब्द ही हैं।

पराम्बा सीता, अनुसुइया, सावित्री, मदालसा आदि के चरण चिन्हों पर चलने व सती साध्वी वीरबालाओं के लिए, भारतीय तपस्विनी, ब्रह्मवादिनी ऋषि कन्याओं के लिए वर्तमानकाल एक विचित्र अग्निपरीक्षा का काल है। एक तरफ एक ऐसा दल है जो वर्णाश्रमादि समस्त मर्यादाओं को नष्ट–भ्रष्ट करके भारतीय देवी को 'पाश्चात्य आधुनिक लेडी' बनाना चाहता है। दूसरी ओर देश की परमार्थ पथावलम्बिनी तपस्विनी, ब्रह्मवादिनी, विदुषी, बालब्रह्मचारिणी नारियों को हमारे विशिष्ट धर्माचार्य जी सम्बोधित करते हुए, "अगर तुम लोग बाबा बन जाओगी, विवाह नही करोगी तो ये सब बिचारे रण्डुए रह जायेंगें।" कह रहे हैं। इस प्रकार विद्वत् परम्परा के शुभ्रयश को कलङ्क पङ्क में डालते हुए स्वामी जी महाराज किस अभूतपूर्व गर्हित स्वप्न को साकार करना चाहते हैं !

अतः अब समाज सोंचे कि पवित्र भारतीय संस्कृति एवं ऋषि परम्परा को गर्त में ले जाने के लिए इन उपरोक्त दोनों पक्षों में क्या अन्तर है ?

ओह ! एक वह दिन था जब भारत का परिव्राजक (संन्यासी) उपनिषदों का चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करता था। हाय अभागे भारत ! आज तुम्हारे उसी पवित्र प्रांगण में भारत का परिव्राजकाचार्य रण्डुवों की समस्या हल कर रहा

है अब आगे की परम्परा क्या करेगी ! भगवान जानें । साक्षात् भगवान शंकर जी जो आचार्य शंकर के रूप में अवतरित हुए थे, आज वह अपने भाष्य और धर्माचार्य के इस भाषण को मिलाकर कितने दुःखी हो रहे होंगे । जिस स्थान से वेद पुराण, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता आदि की ब्रह्मात्मैक्य परक- 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' की अधिकार पूर्वक दिग्दिगन्त में व्याख्या हुई थी, उसी स्थान से अब क्या हो रहा है ? हाय भारत ! अब तुम्हारी क्या दुर्दशा होगी ?

मैं अपनी स्थिति क्या कहूँ; जब कभी एकान्त में शान्त चित्त से बैठता हूँ । उस समय ध्यान और विचार जगत में जब स्वामी जी के वे अशोभनीय शब्द सुनाई देने लगते हैं तो हृदय में महान् कष्ट होता है 'मैं आपन किमि कहउँ कलेसू' । परन्तु श्री स्वामी जी महारज तो हमारे पूज्य ही हैं, हम तो कुछ भी नहीं कह सकते हैं । उस समय बलात् श्रीभरतलाल के वे शब्द स्मृति पटल पर आ जाते हैं जो उन्होंने अपनी पूज्या माता से कहे थे-

"बर मांगत उर भइ नहिं पीरा ।...................... ।।"

अपने देश की आस्तिक जनता से यही निवेदन है कि अपनी पवित्र मर्यादाओं एवं परम्पराओं की रक्षा करने के लिए समय रहते कटिबद्ध और सजग हो जाये ।

हम तो स्वामी जी से वारम्बार यही निवेदन करेंगे कि किसी भी तपस्विनी; ब्रह्मवादिनी एवं विदुषी महिला का योग होने पर उसके साथ उसी प्रकार का आदर्श व्यवहार स्थापित करें जैसा कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम एवं श्री हनुमन्त लाल जी ने तपस्विनी शबरी और महातपस्विनी स्वयप्रभा से व्यवहार किया था ।

जहाँ तक स्वामी जी महाराज ने सुन्दर व्यंग्यात्मक ढंग से भूमिका बनाते हुए एक दोहा कहा कि-

"मूड़ मुड़ाये तीन गुण, सिर की मिटि गइ खाज ।
खाने को अच्छा मिले, लोग कहें महराज ।।

"न कमाई, न सगाई, ऊपर से मञ्च पर बैठ करके, सब लोग पैर छुवेंगे............................ ..."

यह महाराज जी की अपनी अनुभूत बात है और जो जिसकी अनुभूत बात होती है उसका कोई खण्डन भी नहीं कर सकाता है । साथ ही मैं अपनी कलम से इसका खण्डन करके स्वामी जी महाराज के व्यक्तित्व को नहीं बिगड़ूँगा, जिसको इस दोहे के अनुरूप बड़ी मुश्किल से वर्षो में बना पाये हैं ।

इसी सन्दर्भ में बोलते हुए स्वामी जी महाराज ने जहाँ तक यह बात कही कि, "आज कल की लड़कियों के लिए लड़का मिलना बड़ा कठिन हो गया है । सब लड़कियों को यही रास्ता है कि बन जाओ बाबा जी । लड़कियों के विवाह न करने से हिन्दू जाति सदा के लिए नष्ट हो जायेगी"

तो यह बात भी आध्यात्म शास्त्र एवं अनादि काल से चली आ रही समाज की मानसिक स्थिति की ओर ध्यान न देते हुए ही कही क्योंकि–

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी ।।
धर्मशील कोटिक महँ कोई । विषय विमुख विराग रत होई ।।
कोटिविरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सुकृत कोउ लहई ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।

(श्रीमद्भगवदगीता ७/३)

श्लोकार्थ:—हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है [और] उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष [मेरे परायण हुआ] मेरे को तत्त्व से जानता है अर्थात् यथार्थ मर्म से जानता है ।

जिन दिनों भारतवर्ष में वर्णाश्रम धर्म एवं आध्यात्मिक प्रचार प्रसार अपने चरमोत्कर्ष अवस्था में था तब भी यह समस्या नहीं आयी कि सब बाबा बन जायेंगी परन्तु स्वामी जी महाराज वर्तमान समय में यह कल्पना कर रहे हैं । जबकि लगभग पूरा समाज भौतिकवाद के तूफानी झंझावात में पड़कर अपने सामान्य सामाजिक कर्तव्यों को भी भूलता चला जा रहा है । फिर भी यदि स्वामी जी को सन्तोष नहीं है तो उनके अनुसार हम विचार कर रहें हैं । जैसा कि स्वामी जीं ने कहा था, "लड़कियों के बिवाह न करने से हिन्दू जाति सदा के लिए नष्ट हो जायेगी"

भारतवर्ष के विभिन्न खण्डों में हजारों की संख्या में जो हिन्दू ईसाई बन रहे हैं और बहुत सी बातें हैं जिससे कि हिन्दू जाति को सदा के लिए नष्ट हो जाने का खतरा है । परन्तु स्वामी जी महाराज की दृष्टि उन पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में कभी नहीं जाती और जाये भी कैसे ? क्योंकि 'खाने को बढ़िया मिले, लोग कहे महराज' इस अपने दोहे के अभ्यास करने में लगे हैं । इससे ही फुरसत कहाँ ?

परन्तु कहीं करोड़ो में यदि एक हिन्दू नारी सम्पूर्ण भौतिक सुखों को त्याग कर अपने देश और धर्म की रक्षा के लिए एवं परमात्मप्राप्ति के लिए कटिबद्ध होती है वो उससे हिन्दू जाति के नष्ट होने की सम्भावना बताई जाती है और उसे यह श्लोक सुनाया जाता है–

जपस्तपस्तीर्थं यात्रा प्रव्रज्या मन्त्र साधनम् ।
दैवताराधनं चैव स्त्री शूद्र पतनानिषट् ।।

इससे बढ़कर और क्या विडम्बना होगी ?

'अहो मोह महिमा बलवाना ।'

श्री स्वामी जी ने अपनी चिन्ता व्यक्त किया कि; "आज कल की लड़कियों के लिए लड़का मिलना बड़ा कठिन हो गया है"

इस वाक्य से तो यही सिद्ध हो रहा है कि हिन्दू जाति में लड़कों की कमी है और दूसरी ओर स्वामी जी का कहना है कि, "लड़कियों के विवाह न करने से हिन्दू जाति सदा के लिए नष्ट हो जायेगी।" इस अपनी चिन्ता पूर्ण समस्या को हल करने के लिए स्वामी जी को एक ऐसी संस्था का गठन करना चाहिए जो अविवाहिता लड़की-लड़कों की सूची रखें और उसी के अनुसार सभी की सूचना लेवें और देवें तथा अपनी समस्या हल करें। उस संस्था के संस्थापक और प्रमुख संचालक स्वामी जी महाराज तो रहेंगे ही साथ ही चारों तरफ भ्रमण करते हुए, "तच्चिंतनं तत्कथनं अन्योन्यं तत्प्रबोधनम्" करें। और जो लड़कों की कमी प्रतीत होती है उसकी पूर्ति के लिए अन्तर जाति एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवाहों को सम्पन्न करवाकर यह भी समस्या हल कर लेवें। इन्हीं कार्यों में अपने शेष जीवन को समर्पित करके परिव्राजकाचार्य पद को सुशोभित करें; क्योंकि इस कराल कलिकाल को अलंकृत करने के लिए उन्हें इससे बढ़कर शास्त्रानुकूल और कार्य ही क्या मिलेगा ? **इत्यलम्**

एक और आश्चर्यपूर्ण असत्य

पुरी पीठाधीश्वर श्री निरञ्जनदेवतीर्थ जी महाराज का ध्यान जब उनकी अशोभनीय भाषा और अभद्र शब्दों की ओर आकर्षित करते हुए कहा गया कि क्या जगद्गुरू शंकराचार्य के मुख से ऐसी अशोभनीय भाषा निकालना शोभा देता है ? जो कि व्यावहारिक आदर्श के दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत है ? इस पर उन्होंने जो कहा वह भी देखें—

"आपने ग्रन्थ नहीं पढ़े स्वामी जी महाराज। नहीं तो आपको मालूम होता कि भगवान शंकराचार्य और मण्डनमिश्र का शास्त्रार्थ हुआ। आप बहस करिये तो कीजिए। मण्डनमिश्र ने शंकराचार्य से कहा, शंकराचार्य की बात कर रहे हैं। अब मैं शंकराचार्य की भाषा बताता हूँ आपको, जो शंकरदिग्विजय में लिखी है। मण्डनमिश्र ने शंकराचार्य से कहा जाते ही 'कुतो मुण्डी'। मुण्डी माने जिसने मूड़ मुड़ाया। मोटा और इतना बड़ा पंडित, विश्व में उसके समान कोई पंडित नहीं था और अगर हिन्दी में बात करें तो उसका यह अर्थ होता है 'मुण्डा कहाँ से आया।' 'कुतो मुण्डी' भगवान शंकराचार्य नें भी सीधा-सीधा जवाब नहीं दे करके और तीखा जवाब दिया। 'कुतो मुण्डी' के दो अर्थ होते हैं अरे ! मूड़ मुडाये बाबा कहाँ से आया ? दूसरा अर्थ होता है, तैने कहाँ से मूड़ मुड़ाया ? भगवान

शंकराचार्य ने कहा मैंने गले तक मूड़ मुड़ाया। मण्डनमिश्र ने सोचा नया-नया साधु है छोटी उम्र का, मेरी बात अच्छी तरह से समझा नहीं। मैंने तो इससे पूछा 'तू किस रास्ते से आया' चारों तरफ से मेरे मकान के दरवाजे वन्द हैं। आकाश मार्ग से गये थे। लेकिन यह वेचारा कम पढ़ा-लिखा छोटी उम्र का संन्यासी होता मेरी बात को नहीं समझा। इसलिए इसको समझाते हैं, 'पन्था किं पृच्छते मया'। मण्डनमिश्र शंकराचार्य से कहता है, मैं तो आपका रास्ता पूछता हूँ जी, तुम किस रास्ते से आये। तुमने कहाँ से मूड़ मुड़ाया ये मैं नहीं पूछता। मैं तो रास्ता पूछता हूँ। मेरे घर के दरवाजे बन्द हैं और आप किस रास्ते से आए। तो 'पन्था ते पृच्छते मया' यह संस्कृत का जो वाक्य है इसके भी दो अर्थ हैं। मैं तो तुम्हारा पूछता हूँ, किस रास्ते से आये ? इसका एक दूसरा अर्थ ये हो जाता है मैंने रास्ते से पूछा, मैंने रास्ते से पूछा। तो भगवान शंकराचार्य ने कहा। देखिए शंकराचार्य-अच्छा श्रीमान् जी। आपने रास्ते से पूछा तो रास्ते ने आपको क्या कहा, आपने रास्ते से पूछा तो रास्ते ने आपसे क्या कहा ? तब मण्डन मिश्र को यह पता चला कि यह कम पढ़ा-लिखा साधु नहीं है। यह मेरे वाक्यों के दो-दो अर्थ करके असली अर्थ को छिपा करके मुझे धोखा देकर के दूसरा अर्थ करके मेरी बात काट रहा है। इस वास्ते उसने सीधा जवाब दिया। रास्ते ने मुझसे कहा 'तेरी माँ राँड़ है।' इस सम्पूर्ण विश्व का सबसे बड़ा पण्डित शब्द का प्रयोग करता है शंकराचार्य के प्रति। 'कुतो मुण्डी, 'पन्था ते पृच्छते मया' 'किमाह पन्था'। भगवान शंकराचार्य ने कहा 'किमाह पन्था' आपने रास्ते से पूछा रास्ते ने आपसे क्या कहा ? तो मण्डन मिश्र जवाब देता है कि अब इसको, यह मेरी बातों को दोहरे अर्थ से लेकर के और मुझे भ्रम में डालने के लिए ऐसा जवाब दे रहा है। इस कारण से इसको जैसा का तैसा जवाब देना चाहिए। विश्व में मण्डनमिश्र के समान कोई दूसरा पंडित नहीं था और सीधा उसने भगवान शंकराचार्य से कहा, 'किमाह पन्था ते माता रण्डेत्यायतेसमाह' ऐ संन्यासी ! तू मुझसे पूछता है, रास्ते ने मुझसे क्या कहा ? रास्ते ने मुझसे कहा कि तेरी माँ राँड़ है। यह सम्पूर्ण विश्व का प्रधान पंडित था उसके प्रति शब्द हैं। पंडित जी से यदि कोई पंडित ऐसा शब्द कह दे, हमारे स्वामी जी से तो क्या जवाब देंगे ? जवाब तो देना ही चाहिए जवाब नहीं देंगे तो यही

हार जायेंगे। अभी बताते हैं भगवान शंकराचार्य ने क्या जवाब दिया। उसने कहा, भगवान शंकराचार्य ने कहा मण्डनमिश्र से कि देखो जी पंडित जी ! आपने रास्ते से पूछा और रास्ते ने आपसे कहा कि 'तेरी माँ राँड़ है।' इसमें मेरी माँ का तो कुछ लेना देना नहीं है। रास्ते से आपने पूछा और रास्ते ने आपसे कहा कि तेरी माँ राँड़ है तो किसकी माँ राँड़ हुई ? मेरी माँ से क्या लेना देना ? कहते हैं शंकराचार्य कैसे शब्दों का प्रयोग किया ? यह ज़रा हमको बतलावें। हमने शंकराचार्य भगवान के अअर-अक्षर पढ़े हैं और सारी उम्र पढ़े हैं और पढ़े नहीं सारे उम्र पढ़ाये, काशी में बैठकर पढ़ाए और कहीं नहीं।

यह हैं शंकराचार्य के द्वारा, शंकराचार्य से जो मण्डनमिश्र ने कहा 'कि सुरा पीता' अरे बाबा ! सवाल दीगर जवाब दीगर मैं कुछ और पूछ रहा हूँ और तू जवाब दे रहा है 'कि सुरापीता' क्या तूने शराब पी रखी है। यह पण्डितों के शब्द हैं विश्व विख्यात पण्डित के शब्द हैं कि 'सुरा पीता।' भगवान शंकराचार्य ने कहा पीता का अर्थ पी और पीता और पीला भी होता है, पीता माने पीली। भगवान शंकराचार्य ने कहा आपको मालूम होगा पीली होती है। 'हमने तो सुना हरी होती है'। फिर मण्डनमिश्र ने कहा अरे साधु हो करके तू शराब का रंग जानता है तो भगवान शंकराचार्य ने कहा मैं तो रंग ही जानता हूँ और तू रस भी जानता है।

मैंने इसी प्रकार शंकराचार्य में व मण्डनमिश्र के जो शब्द कहे, यह शंकरदिग्विजय ग्रन्थ के अन्दर ज्यों के त्यों हैं। आप प्रमाण दीजिए कि शंकराचार्य ने और मण्डनमिश्र ने आपस में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं किया। एक दूसरे की माँ को राँड़ तक बताने के शब्द का प्रयोग किया।

दूसरी बात हमारी भाषा की कि भगवान शंकराचार्य ने जिनके अनुयायी हम हैं, जिनके मठ में झाड़ू लगाने का और सेवा करने का काम करते हैं उनके अनुसार हम भाषा का प्रयोग करते हैं।"

उपरोक्त प्रकार से महापुरुषों का आश्रय लेकर जो स्वच्छन्द रूप से अपनी बात सिद्ध करने का पुरीपीठाधीश्वर श्री निरञ्जनदेव तीर्थ जी ने अद्वितीय प्रयास

किया उसे देखकर तो ऐसा लगता है जैसे कि महाराज श्री को किसी सिद्ध महा-पुरुष का भूतकाल में कभी अलौकिक आर्शीवाद मिला हो कि–

'स्वच्छन्दा भारती देवी जिह्वाग्रेते भविष्यति'

अर्थ– तुम्हारी जिह्वा के अग्रभाग में स्वच्छन्द (बे रोक-टोक) भगवती सरस्वती देवी का निवास होगा।

क्याही सुन्दर विचार दिये हैं ! इन्हें भी अब सत्य की कसौटी पर रखने के लिए 'शंकर दिग्विजय' नामक ग्रन्थ से मिलावें, कि वास्तव में यह 'राँड' शब्द वहाँ पर प्रयुक्त हुआ है या नहीं। जिसके ऊपर स्वामी जी ने पाण्डित्यपूर्ण अधिकार प्रदर्शित किया है और हमसे उत्तर मांगा है। वह ग्रन्थ ही अब निर्णय करेगा। यथा स्वामी जी ने कहा–

आप प्रमाण दीजिये कि शंकराचार्य मण्डन मिश्र ने आपस में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं किया। एक दूसरे की माँ को 'राँड' तक बताने के शब्दों का प्रयोग किया।"

अब मैं इसका भी उत्तर दे रहा हूँ। ध्यान से देखें:–

भगवान शंकराचार्य और मण्डन मिश्र ने आपस में इस (राँड) अशोभनीय शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वहाँ के वार्तालाप का अंश इस प्रकार है:–

जिस समय भगवान शंकराचार्य मण्डन मिश्र के यहाँ पहुँचे हैं उस समय मण्डनमिश्र अपने घर के सभी द्वार बन्द किए श्राद्ध कर्म में संलग्न थे। अपने तपोबल से महर्षि व्यास तथा जैमिनी दोनों मुनियों को इस श्राद्धकर्म में आमन्त्रित कर उनके पादपद्मों का अर्चन आदि कर रहे थे। योगिराज भगवान शंकराचार्य आकाश-मार्ग से अन्दर उतरकर दोनों मुनियों को प्रणाम किया। उस समय अकस्मात् आकाशमार्ग से उतर कर दोनों मुनियों के समीप खड़े होने वाले शिखासूत्र विवर्जित एक संन्यासी को जब खड़ा देखा तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा (क्योंकि श्राद्ध में सन्यासी का आना निषिद्ध माना जाता है) ॥१४॥ संन्यासी को अकस्मात् आया हुआ देखकर मण्डनमिश्र अत्यन्त रुष्ट हो गये। इस घटना से आचार्य के हृदय में भी बड़ा कौतुक उत्पन्न हो गया। तदनन्तर इनदोनों विद्वानों में इस प्रकार प्रश्नोत्तर होने लगा ॥१५॥

कुतोमुड्यागलानमुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ॥
पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम् ॥

(श्रीशंकरदिग्विजय सर्ग ८/१६-१७)

अर्थ:— मण्डन मिश्रः– 'मुण्डी (सन्यासी) कहाँ से ? (परन्तु 'कुतोमुण्डी का अर्थ यह भी है कि तुम कहाँ से अर्थात् किस अंङ्ग से मुण्डित हो ?

शंकरः— मैं गले तक मुण्डी हूँ । अर्थात् मेरा सिर मुण्डित है ।

मण्डनः— मैं आपकी राह के विषय में पूछता हूँ कि आप कहाँ से आये हैं ।
('पन्थाः पृच्छयते' कर्म वाच्य का प्रयोग है । इसका अर्थ यह भी हुआ कि 'मार्ग मुझसे पूछा जाता है' ।) इसी अर्थ को लक्षित कर आचार्य ने पूछा मार्ग से पूछने पर उसने उसका उत्तर क्या दिया ?

मण्डनः— मार्ग ने मुझे उत्तर दिया है कि तुम्हारी माता मुण्डा हैं ।

शंकरः— बहुत ठीक । तुमने ही मार्ग से पूछा है, अतः उत्तर तुम्हारे लिए है । 'त्वन्माता' शब्द तुम्हारी माता के लिए ही प्रयुक्त है । मैंने तो मार्ग से कुछ पूछा ही नहीं है । अतः उसका उत्तर मेरे विषय में नहीं है । (आशय है कि मार्ग तुम्हारी माता को मुण्डा (संन्यासिनी) बतलाता है । मेरी माता के विषय में नहीं । (१६-१७)

अहो पिता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर ।
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम् ।।
(श्रीशंकर दिग्विजय ८/१८)

मण्डनः— क्या आपने सुरा (शराब) पी ली है (पीता) इतनी ऊंची-नीची बातें करते हैं । (पीता का दूसरा अर्थ पीला रंग है । इसीकोलक्ष्यकर-)

शंकरः— सुरा श्वेत होती है, पीली नहीं ।

मण्डनः— वाह ! तुम तो उसके रङ्ग को जानते हो ।

शंकरः— मैं तो रङ्ग जानता हूँ, और आप उसका रस (रङ्ग का ज्ञान होने से मुझे पातक न लगेगा, परन्तु आप तो उसके रस से परिचत होने से प्रत्यवायी हैं । 'न सुरां पिबेत्' वाक्य सुरापान का निषेध करता है, सुरादर्शन का नहीं) ।।१८।।

श्री मण्डनमिश्र एवं आचार्य शंकर के मध्य में जो प्रश्नोत्तर हुआ उसका आवश्यक अंश ज्यों का त्यों हमने यहां पर उद्धरित किया है । इस अंश को देश-विदेश की जनता पढ़े और 'श्री शंकर दिग्विजय' नामक ग्रन्थ से मिलावें कि मण्डन मिश्र और आचार्य शंकर ने 'रांड' शब्द का प्रयोग कहाँ पर किया है ? तथा श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज अपनी उस चुनौती को याद रखते हुए उस बात को प्रमाणित करें कि उन दोनों महाविद्वानों ने इस अव्यवहारिक 'रांड' शब्द का प्रयोग किया ।

मैं तो यह समझता हूँ कि किसी भी समाज के पथ-प्रदर्शक महापुरुष को अपनी दुर्बलता छिपाने के लिए किसी अवतार, सिद्ध एवं पूज्य गुरुजनों के आदर्शों को धूमिल नहीं करना चाहिए । इसमें देश की वह जनता, जिसने श्री 'शंकर दिग्विजय' का अध्ययन या श्रवण नहीं किया है, वह क्या सोचेगी ? वह यही सोचेगी कि महाराज पुरीपीठाश्वर ने सही कहा । वह इतने बड़े महापुरुष शंकराचार्य पीठ पर स्थित होकर झूठ थोड़ी बोलेंगे । अतः अगर हम लोग ऐसे

अभद्र शब्दों का प्रयोग करें तो कोई बुराई नहीं। क्योंकि मण्डनमिश्र और शंकराचार्य ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। सोचो, मिथ्या भाषण का प्रभाव समाज पर क्या होगा ? भगवान श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

[श्रीमद्भगवदगीता ३/२१]

अर्थः—श्रेष्ठ पुरूष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरूष भी उसके ही [अनुसार बर्तते हैं] वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं।

इस नियम के अनुसार इस मिथ्या भाषण से सामान्य जनता जो लाभ उठायेगी; उससे भा तीय समाज का भविष्य किस अन्धकार में जायेगा ? इस विषय पर इस भारत देश के विद्वान् और विदुषी नारियाँ सोचें।

अब थोड़ी देर के लिए मैं वैकल्पिक विचार द्वितीय पक्ष में कर रहा हूँ— मान लो, उन दोनों महाविद्वानों ने कुछ शब्दों का खिलवाड़ आपस में किया भी, तो क्या वही भाषा गुरू शिष्य के मध्य में आप स्थापित करना चाहते हैं ? आप जगद्‌गुरू के पद पर हैं। यह जगद्‌गुरू शब्द ही सिद्ध कर रहा है कि व्यांवहारिक दृष्टि से जगत के लिए महाराज जी क्या हैं ? और स्वामी जी महाराज के लिए जगत क्या है ? क्या जगद्‌गुरू और जनता के मध्य में इस प्रकार शब्द खिलवाड़ के द्वारा एक दूसरे पर एक दूसरे को अशोभनीय मलिन कीचड़ उछालना चाहिए ?

पूज्य श्री स्वामी जी महाराज से प्रश्न हैं कि क्या अब इस भारत को जगद्‌गुरू से यही सीखना होगा ? यह लिखते हुए हमारी आँखो से अश्रुपात हो रहा है—

जिन भगवान आद्यशंकराचार्य के प्रस्थान-त्रय के भाष्य एवं प्रकरण ग्रन्थों तथा जीवन आदर्शों का आश्रय लेकर उन्हीं के स्थानापन्न अनुयायी को देश एवं विश्व के अज्ञानान्धकार को निवृत्त करना चाहिए था परन्तु हाय ! इसके विपरीत उन्हीं के ऊपर अशोभनीय शब्दो के प्रयोग करने का आरोप लगाकर देश को किन शब्दों को प्रयोग करने की प्रेरणा दी जा रही है। समय के अनुसार, युग के अनुसार वैसे ही समाज में अनुचित शब्दों की कमी नहीं है, अगर कमी भी हो तो उसे ··——·········——·····। जिन आद्य जगद्‌गुरू शंकराचार्य ने अपने सम्पूर्ण भाष्य में परब्रह्म परमात्मतत्त्व की ही एक मात्र सत्ता को सिद्ध किया है, उन्हीं के स्थानापन्न अपने भाषण में क्या सिद्ध कर रहे हैं ! इस बात को समझने के लिए आप पुनः पीछे महाराज जी का प्रवचनांश पढ़ लेवें।

"जहाँ तक महाराज जी ने यह कहा कि, "हमने शंकराचार्य भगवान के अक्षर-अक्षर पढ़े हैं, और पढ़े नहीं—सारी उम्र पढ़ाए; और काशी में बैठ करके पढ़ाए और कहीं नहीं।"

महाराज श्री के इस परिश्रम का बिल्कुल ही मैं विरोधी नहीं हूँ। इसकी तो मैं प्रशंसा करता हूँ परन्तु साथ ही निवेदन करता हूँ कि बहुत बड़े विद्वान् से भी चूक हो जाना सम्भव है अतः उसको सम्भाल लेना चाहिए यही विद्वान् की विद्वता है।

द्वितीय पक्ष में जहाँ तक अशुद्ध बोलते हुए भी पूर्ण रूपेण अहमाकार वृत्ति से ओत-प्रोत होकर कहा, 'हमने शंकराचार्य भगवान के अक्षर-अक्षर पढ़े हैं..............................।'

आपने अक्षर-अक्षर पढ़े होंगे परन्तु शब्द और वाक्य एवं तज्जन्य शास्त्र का तात्पर्य अधिकारी बनकर नहीं पढ़े होंगे; यह आपकी भाषा, शैली तथा प्रतिपाद्य विषय से मालूम होता है। अक्षर अक्षर पढ़ने से किसी ग्रन्थ के तात्पर्य का ज्ञान नहीं होता किसी भी छोटे दूसरी कक्षा के बच्चे को कोई संस्कृत ग्रन्थ दे दिया जाय तो वह अक्षर-अक्षर तो पढ़ सकता है परन्तु वाक्य नहीं पढ़ सकता और न उसके तात्पर्य को ही समझ सकता है।

स्वामी जी ने यह भी कहा कि, भगवान शंकराचार्य ने कहा 'हमने सुना शराब हरी होती है" यह कथन भी 'श्री शंकरदिग्विजय' में नहीं है। यदि हो तो दिखाने की कृपा करें।

इसके अतिरिक्त पुनः यह कहा कि, 'भगवान शंकराचार्य ने जिनके अनुयायी हम हैं, जिनके मठ में झाड़ू लगाने का और सेवा करने का काम करते हैं। उनके अनुसार हम भाषा का प्रयोग करते हैं।"

यहाँ तो बस हम इतना कहते हैं कि, 'कहाँ राजा की रानी और कहाँ भग्गा की कानी" कहाँ भगवान शंकराचार्य की विश्व के विद्वानों को चमत्कृत कर देने वाली युक्ति, प्रमाण, अनुभव, तर्कपूर्ण सत्य, शिष्ट एवं दार्शनिक भाषा और कहाँ यह अशोभनीय अशिष्ट और अभद्र वाक्य। जिस भाषा को भगवान शंकराचार्य की भाषा के अनुरूप बताकर सामान्य भारतीय जनता को किस महान् अन्धकार में ले जाने का प्रयास कर रहे हैं।

मैं सामान्य जनता से भी यह निवेदन करता हूँ कि भगवान शंकराचार्य की भाषा को समझने के लिए उनके किसी भी भाष्य अथवा प्रकरण ग्रन्थ को पढ़ें, जो कि हिन्दी में अनुवादित भी मिलते हैं; और देखें कि भगवान शंकराचार्य की भाषा क्या तथा कैसी है ?

जहाँ तक स्वामी जी महाराज ने भगवान शंकराचार्य के मठ में झाड़ू लगाने का संकेत करते हुए अपनी भाषा को उनकी भाषा के अनुरूप सिद्ध करने का प्रयास किया। तो समाज में बहुधा ऐसा देखा जाता है कि किन्हीं-किन्हीं शिष्ट, सभ्य एवं शिक्षित घरों में जो झाड़ू लगाने वाले होते हैं निश्चित ही उनका व्यक्तित्व

रहन-सहन और भाषा उनके स्वामी से भिन्न अपने समाज के स्तर के अनुसार होता है। फिर भी वह कभी-कभी अतिगर्व से बोलतें हैं कि 'जानते हो! मैं अमुक बड़े आदमी के यहाँ झाड़ू लगाता हूँ। यह कहते हुए वे अपने व्यक्तित्व और भाषा उस अपने सभ्य एव शिक्षित स्वामी के अनुरूप सिद्ध करने का सक्रिय स्वप्न देखने लगते हैं।

इस प्रकार महापुरुषों का झूठा नाम लगाकर अपने मिथ्या और अशोभनीय भाषण को भी सत्य सिद्ध करने का प्रयास करना सर्वथा मानवता, साधुता और शिष्टाचार के विपरीत साहसमात्र है। इस प्रकार से स्वामी जी ने कई स्थलों पर असत्य भाषण किया। यथा-

(१) "विश्व में अनादि काल से चले आ रहे हिन्दू जाति के इतिहास में सुलभा के अतिरिक्त कोई स्त्री अविवाहित नहीं रही।"

(२) जो तत्वज्ञानी होता है उसको न भूख लगती है न प्यास लगती है।"

(३) मन्डन मिश्र व शंकराचार्य में एक दूसरे की माँ को 'राँड' कहा।

(४) शंकराचार्य ने कहा, हमने सुना शराब हरी होती है।

यह भी बातें पूर्ण रूपेण मिथ्या है। सत्य ही कहा गया है, झूठ बोलने वाले को और जमीन पर सोने वाले को क्या कमी?" परन्तु याद रहे इस प्रकार झूठ बोलने वालों के लिए शास्त्र क्या संकेत करते हैं:-" ऋतंवादीक्षा सत्यं दीक्षा, तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्"

(एतरेय ब्राह्मण अ० १ खण्ड ६)

अर्थ:- दीक्षा ही ऋत है, सत्य ही दीक्षा है, अतः दीक्षित व्यक्ति को सर्वदा सत्य बोलना चाहिए।

समूलो वा एष परिशुष्यतियोऽनृतमभिवदति।"

[प्रश्नोपनिषद् ६/१]

अर्थ:- जो पुरुष मिथ्या भाषण करता है वह सब ओर से मूल सहित सूख जाता है।

इसी का भाष्य करते हुए भगवान आद्य शंकराचार्य जी लिखते हैं:-

समूलः सह मूलेन वा एषोऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा कुर्वन्ननृतमयथा-भूतार्थभिवदति यः स परिशुष्यति शोषमुपैतीहलोकपरलोकाभ्यां विच्छद्यते विनष्यति।" [भगवान आद्य शंकराचार्य भाष्य प्रश्नोपनिषद् ६/१]

अर्थ:- जो पुरुष अपने आत्मा को अन्यथा करता हुआ अनृत-अयथार्थ भाषण करता हैं वह समूल अर्थात् मूल सहित सूख जाता है अर्थात् इस लोक और परलोक दोनों से विलग होकर नष्ट हो जाता है।

रामचरित मानस की ओर भी ध्यान देवें:-

"नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा"

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्री बालघातिनः ।

मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य त ते स्युर्ब्रुवता मृषा ।। (मनुस्मृति ८/८९)

अर्थः- ब्राह्मण, स्त्री तथा बालक की हत्या करने वाले, मित्र द्रोही तथा कृतघ्नों को जो नरक आदि लोक प्राप्त होते हैं, वे सब असत्य बोलते हुए तुम्हें प्राप्त होवें ।

जन्मप्रभृति यत्किञ्चितपुण्यं भद्रत्वया कृतम् ।

तत्ते सर्वेशुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ।। (मनुस्मृति ८/९०)

अर्थः- हे भद्र ! यदि तुम अन्यथा अर्थात् असत्य बोलो तो जन्म से लेकर जो कुछतु मने पूण्य किया है, वह सब कुत्तों को प्राप्त हो अर्थात् वह सब पुण्य नष्ट हो जाय ।

असत्य बोलने वालों को शास्त्र की ओर से दण्ड भी निर्धारित है । उसे भी समझने का कष्ट करें ।

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ।

अन्धःशत्रुकुलं गच्छद्यः साक्ष्यमनृतम् ।। (मनुस्मृतिः ८/९३)

अर्थः- साक्षी में जो व्यक्ति असत्य बोलता है ; वह अगले जन्म में नंगा शिर मुड़ाया, अन्धा, भूखप्यास से युक्त कपाल [फूटाठीकरा] लिए हुए भीख माँगने के लिए शत्रुओं के यहाँ जाता है ।

अतः मैं अपने वयोवृद्ध स्वामी जी से प्रार्थना करता हूँ कि इस वृद्धावस्था में असत्य बोलना छोड़कर भगवान भाष्यकार के सिद्धान्तानुसार ब्रह्माभ्यास करते हुए जीवन के महान् उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करें ; क्यों कि शरीरों का कोई ठिकाना नहीं है और श्रुति भगवती का यह संकेत हैः-

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।"

(केनोपनिषद् २/५)

अर्थः- यदि इस जन्म में ब्रह्म को जान लिया तब तो ठीक है और यदि इस जन्म में न जाना तब तो बड़ी भारी हानि है ।

पुनः श्रुति भगवती का संकेतः-

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।

नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनँहि तदिति ।।

[बृहदारण्यकोपनिषद् ४/४/२०]

अर्थः- बुद्धिमान ब्राह्मण को उसे हीं जानकर उसी में प्रज्ञा करनी चाहिए । वहुत शब्दों का अनुध्यान [निरन्तर चिन्तन] न करें ; वह तो वाणी का श्रम मात्र ही है ।

ॐ उपशम

कराल कलिकाल पर विचार

इसी विवादास्पद् भाषण के मध्य में स्त्री जगत की ओर विशेष संकेत करते हुए पुन: स्वामी जी महाराज ने जो कहा, "युवावस्था और आजकल का यह वातावरण, जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य छाया हुआ है। शहर की कोई ऐसी सड़क नहीं है जिस सड़क के खम्भे पर सिनेमा के गन्दे व अश्लील चित्र न हो, घर से बाहर निकलना मुश्किल है। कोई ऐसा पत्र, पत्रिका अखबार नहीं है जिसके अन्दर कामवासना की कथा न हो। ऐसी परिस्थिति में स्त्रियों को विवाह से गृहस्थ आश्रम छुड़ा करके और बाबा जी बनाना, उनको बिल्कुल गलत रास्ते पर ले चलना, कभी कल्याण नहीं हो सकता। आज के इस घोर कराल कलिकाल में जब सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में "विश्वामित्र पराशर प्रभृतयोवाताम्बुपर्णाशिना" विश्वामित्र, पराशर इत्यादि जो है वे अपने इन्द्रियों के वेग को नहीं रोक सकते, सके। तो आज के इस कराल कलिकाल में कल की एक दुधमुँही बच्ची से हम यह आशा करें कि वह संसार के इन सब झंझावातों से बच करके अपना जीवन पवित्र व्यतीत कर लेगी।

यह जो "स्त्रियों के विवाह से गृहस्थ आश्रम छुड़ा करके और बाबा जी बनाना........................" आदि आपका आरोप है वह केवल राग–द्वेष जलन, ईर्ष्या आदि का उबालमात्र है, और कुछ नहीं। निष्पक्ष होकर, साधुता पूर्वक तथ्य को यथार्थरूप से समझकर नहीं बोले। अपनी प्रतिष्ठा की पिपासा को समाज से किसी प्रकार पूरा करने के लिए यह एक उपाय मात्र ही है। हमारे विचारों को सुन करके यदि किसी में आध्यात्मिक विचार जाग्रत हो जाये', तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उसे किसी आश्रम विशेष से अलग हटाते हैं। यदि यही बात है तो संसार के सहस्रों स्त्री–पुरुषों ने जगत के आकर्षक, मोहक, भ्रामक सुखों से उपराम होकर जिन भगवान बुद्ध, भगवान आद्य शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य आदि (जितने भी किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रवर्तक हैं) का अनुगमन किया है उन सभी महापुरुषों पर भी यही लांछन लगाना चाहिए। इस प्रकार की विचार धारा को लेकर तो लेनिन और कार्लमार्क्स के अनुयायी गण ही विभिन्न प्रकार से धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्वों की धज्जियाँ उड़ाते हैं। उसी प्रकार की विचार धारा का आपने भी प्रकारान्तर से आश्रय लिया है।

रही बात किसी के साधु–असाधु, गृहस्थ–विरक्त, नैतिक अनैतिक, शिष्ट–अशिष्ट बनने की, तो जिसके जैसे पूर्व जन्म उपार्जित बलिष्ट संस्कार होंगे वह

वैसा ही बनेगा । उसे कोई बदल नहीं सकता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, निर्धन हो या धनवान, ब्राह्मण हो या अन्त्यज गृद्ध हो, चाहे कौआ सबके सब स्व-स्वसंस्कारों के अनुरूप ही बनते है । सिद्धार्थ (भगवान बुद्ध) के पिता ने अपने प्रिय पुत्र के विरक्त न होने के लिए राज्य में हर सम्भव चित्ताकर्षक व्यवस्था की थी । मीरा के सम्बन्धियों ने उन्हें हर-प्रकार से कष्ट दिया था, और तो जाने दीजिए ब्रजाङ्गनाओं को तो उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने ही पति, पुत्रों की सेवा शुश्रूषा करने के लिए निर्देशित किया था फिर भी यह लोग उनकी इच्छाओं एवं आज्ञाओं का पालन करने में असमर्थ रहे । अब आप बताएँ, उन्हें कौन बहकाने गया था ? हम, आप या अन्य कोई साधु महात्मा । वहाँ उनके बलिष्ठ संस्कार ही विशेष थे, जिन्होंने सिद्धार्थ को घनघोर रात्रि में महान् सुन्दरी सती साध्वी पत्नी यशोधरा व नवजात शिशु राहुल के मोह एवं राज्य सुखोपभोग की लिप्सा को तृणवत् छुड़ाकर महान् तप में संलग्न कर दिया था, मीरा को गिरधर गोपाल के श्री चरणों में लगाकर दुनियाँ की ओर से आँख हटवा ली थी, ब्रजाङ्गनाओं के श्रीकृष्ण प्रेम माधुरी में बेसुध बना दिया था । जिनके लिए भगवान अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेव जी महाराज क्या कह रहें हैं ? ध्यान से देखें,

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरि कथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।।

(श्रीमद्भागवत स्क० १०/४७/६३)

अर्थ :— नन्द बाबा के व्रज में रहने वाली गोपाङ्गनाओं की चरणधूलि को मैं बारंम्बार प्रणाम करता हूं, उसे सिर पर चढ़ाता हूँ । अहा ! इन गोपियों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीला कथा के सम्बन्ध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सदा सर्वदा पवित्र करता रहेगा ।

यह तो हुए बलिष्ट उत्तम संस्कारों से युक्त उदाहरण । अब देखें, अनुभव करें, कुत्सित संस्कारों की विचित्रता । महाराजा भर्तृहरि की पत्नी महारानी पिंगला अपने पति को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी, ऐहिक सुखोपभोग की सारी सामग्री उसके चारों तरफ भरी पड़ी थी, फिर भी उसके कुत्सित संस्कारों ने कहाँ पहुंचा दिया, क्या से क्या बना दिया !

इन संकेतो एवं उदाहरणों से आप अनुभव करें और विचार करें कि किसी को कोई कुछ नहीं बनाता । उसके प्रबल संस्कार ही उसका निर्माण करते हैं । यह ध्रुव सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त को कोई भी किसी तर्क से मिटा नहीं सकता है, केवल तर्कों से दूषित अवश्य कर सकता है । तथा समाज को एक भ्रमात्मक स्थिति में डालकर धर्म विमुख कर रागद्वेष फैला सकता है ।

स्वामी जी ने कहा, "युवावस्था और आजकल——————————————————————————कामवासना की कथा न हो ।"

जहाँ तक बात आजकल के इस वातावरण और घोर कलिकाल की बात है; उसका तो प्रभाव प्रत्येक आध्यात्मिक साधक के लिए समान रूप से है, वह चाहें स्त्री हो अथवा पुरुष । यह तो नहीं कि यह घोर कराल कलिकाल स्त्रियों के लिए ही है, पुरुषगण इस खतरे की सीमा से बाहर हैं । इस भीषण युग में ही आनन्द मयी सरीखी महान् विभूतियाँ हो गयी हैं; जिनके चरणों में देश के सभी सन्त, महात्मा, विद्वान् श्रद्धा से नतमस्तक होते थे । जिन्होंने अपने त्याग, तपस्या, साधना आध्यात्मिकता एवं सद्व्यवहार से भारत देश को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व को दिखा दिया कि भारत माता की गोद में अब भी कैसी-कैसी ललनाएँ हैं । माता आनन्दमयी के ऊपर इस कराल कलिकाल ने क्यों नहीं आक्रमण किया ? स्वामी जी महाराज याद रखना—

"सीम कि चापि सकै कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू"

जिस नारायण श्री हरि ने प्रह्लाद को प्राणघातक भीषण परिस्थितिओं में भी सुरक्षित रखा । जिसने मीरा को जहर का प्याला पी लेने के बाद भी जिला लिया । सदन कसाई, रैदास चमार और आप सरीखे महात्माओं द्वारा दुतकारी हुई शबरी की जिसने मात्र रक्षा ही नहीं की अपितु परम पद प्रदान किया । उस भक्त वत्सल, सर्वशक्तिमान् की प्रतिज्ञा क्या है ! देखें—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

[श्रीमद्भगवद्गीता ९/२२]

अर्थ :—जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ ।

रामचरित मानस में मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम नारद जी से क्या कह रहे है उसे भी देखें:—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ।

[रामचरितमानस अरण्य काण्ड]

इस प्रकार की घोषणा करने वाला शरणागत वत्सल, सर्वनियन्ता नारायण अब क्या कहीं चला गया है ? वह पहले भी था, अब भी है और भविष्य में भी रहेगा । भले ही आपको उसका पता नहीं; और पता भी कैसे हो ! जब आपके पास पवित्र भाव नहीं है । भक्त और भगवान के मध्य जो भावातीत सम्बन्ध होता है, उसको तो केवल भक्त और भगवान ही समझ सकते हैं; सामान्य व्यक्ति नहीं ।

जहाँ तक आपने यह कहा कि, 'जब सतयुग, त्रेतायुग..................

.........................पवित्र व्यतीत कर लेंगी।' इस विषय में भी थोड़ा विचार करें कि यहाँ पर आप स्त्रियों के विषय में चर्चाकर रहे थे परन्तु पुरुषों की दुर्बलता का उदाहरण दे रहे हैं। आपको यहाँ किसी आध्यात्मिक पथ पर चलने वाली अपने पथ से विचलित हुई तपस्विनी नारी का ही उदाहरण देकर दुधमुँही बच्ची के जीवन को दूषित करने का प्रयास करना चाहिए था; लेकिन आप किसी की दुर्बलता किसी पर थोपना चाहते हैं। यह तो न्याय नहीं है।

विश्वामित्र, पराशर आदि पुरुषों का उदाहरण ध्यान में रखते हुए इस कराल कलिकाल में स्वामी जी महाराज! आपको सन्यास नहीं लेना चाहिए था और न तो परम्परा में कोई पुरुष साधु संन्यासी बनाना चाहिए था; क्योंकि कारण आपकी दृष्टि से ओझल नहीं है। यह हेतु आपने जो दिया—

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना—
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृत पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् विन्ध्यस्तरेत् सागरम्॥

अर्थ:—वायु, जल और वृक्षों के पत्ते खाकर रहने वाले पराशर, विश्वामित्र प्रभृति ऋषि वृन्द भी जब स्त्रियों के मुखकमल को देखकर विमुग्ध हो गये, तब घी, दूध और दही के साथ शालि चावल खाने वाले लोग यदि इन्द्रियों का निग्रह कर सकें तो यह वैसी ही बात होगी कि विन्ध्याचल पर्वत समुद्र में तैर गया।

यह भी उदाहरण ठीक नहीं दिया क्योंकि इसमें तो सम्पूर्ण साधु समाज सहित आप भी आ जाते हैं। हेतु तो ऐसा होना चाहिए था; जिसकी परिधि से कम से कम आप तो बाहर होते ही, तब तो आपकी बुद्धिमानी थी, विद्वता थी। यह तो आपने वही बात कही जिसको आधार बनाकर हर साधु सन्त निन्दक व्यक्ति अपनी आलोचना तैयार करता है।

फिर भी अब महाराज जी! अपने इस उपरोक्त उदाहरण के उत्तर को भी ध्यान से पढ़ें—

सिंहो बली द्विरदशूकरमांसभोजी, संवत्सरेण कुरुते रति मेकवारम्।
पारावतः खलु शिलाकणमात्रभोजी, कामी भवेन्ननुदिनं वद कोऽत्र हेतुः॥

अर्थ:-सिंह अत्यन्त बलिष्ठ होता है एवं हाथी तथा शूकरों का मांस खाता है, किन्तु साल भर में केवल एक बार स्त्रीसंग [सहवास] करता है। किन्तु पत्थर के कंकड़ों को खाकर जीवित रहने वाला कबूतर पक्षी निरन्तर रति क्रिया में ही रत रहता है; बताइये, इसका क्या कारण है?

सिंह हाथी शूकर आदि के पौष्टिक मांस को खाकर भी उतना काम पीड़ित नहीं होता जितना कंकण के टुकड़ों को चुगकर जीवित रहने वाला कबूतर

काम पीड़ित होता है। इसका मुख्य हेतु भोजन है अथवा वासना। यहाँ पर वासनापूर्ण संस्कारों की ही प्रधानता है। जहाँ तक विश्वामित्र पराशर आदि महापुरुषों के जीवन उदाहरण को दिखाकर बात की गई उसका उद्देश्य यह नहीं कि साधक विघ्नों के भय से सत्पथ का अनुगमन न करे बल्कि साधक इतना अधिक सावधान रहे कि इन दुर्गम घाटियों को सहज ही पार कर जाय।

इस उद्देश्य को न समझने के कारण ही स्वामी जी महाराज के समझने की प्रक्रिया एवं दिशा बदल गयी है। जिसके कि परिणाम भी अवाँछनीय ही होंगे। अब विचार करें कि एक ओर देश के चरित्र बल को वासनाउत्तेजक चित्र पट आदि का प्रचार-प्रसार समाप्त कर रहा है जैसा कि आपने भी संकेत किया है और दूसरी ओर स्वयं भी इस प्रकार के उपदेशों के द्वारा विश्वामित्र पराशर आदि के उदाहरणों को दे-देकर के अध्यात्मिक साधकों के मनोबल को गिराकर उसी प्रकार के प्रचार-प्रसार के पूरक मात्र बन रहे हैं। आप में और उनमें बस इतना ही अन्तर है कि आप सत्पथ पर चलने से रोक रहे हैं और वे कुपथ पर चला रहे हैं। आप कहते हैं पूर्व नहीं जाना उधर विश्वामित्र आदि की भाँति फिसल जाने का खतरा है ; और वे कहते हैं पश्चिम दिशा की ओर बढ़ो-खाओ, पिओ और मौज उड़ाओ।

जिस कराल कलिकाल के वातावरण को कारण बना कर आप एक दूधमुँही अध्यात्मनिष्ठ अविवाहित बच्ची के आदर्श को सुरक्षित रखना असम्भव सिद्ध करके उसे विवाह करने के लिए बाध्य करते हैं। उसी हेतु के अनुसार किसी द्विजाति की बाल विधवा देहनिष्ठ कन्या को पुर्नविवाह करना चाहिए। अब आप बताएं कि क्या आप अपने धर्मशास्त्र के अनुसार बाल विधवा को विवाह की आज्ञा दे देंगे ? यदि नहीं ; तो वह शरीर निष्ठ बालिका आज के इस वातावरण में अपने चरित्र की रक्षा आजीवन कैसे करेगी ? यदि वह बाल विधवा देहनिष्ठ कन्या आजीवन अपने चरित्र की रक्षा कर सकती है तो यह अविवाहित दुधमुँही आध्यात्मनिष्ठ बच्ची क्यों नहीं रक्षा कर सकती है ?

ध्यान रहे स्वामी जी महाराज ! हमारे देश की सती साधवी एवं तपस्विनी नारियों के बलिदान का जो विश्व प्रसिद्ध पवित्र इतिहास है, उसे पढ़कर और सुनकर कौन ऐसी नारी है जिसके अन्तःकरण में एक विचित्र वीर रस जाग्रत न हो जाय। भारतीय नारियों ने अपने धर्म की रक्षा करने के लिए कितने कष्ट सहे हैं ; इतिहास वेत्ता इससे अपरिचित नहीं हैं। यदि भारतवर्ष की नारी अपना धर्म परित्याग कर देती ; त्याग, तपस्या, बलिदान आदि से अपने जीवन को समलंकृत न करती तो आज आर्यावर्त भारतवर्ष अखिल विश्व की दृष्टि में कभी का गिर गया होता। यदि तटस्थ होकर देखा जाय तो हमारे देश की आन-बान शान नारी समाज ने ही रखी है। चाहे वह परमविरक्त, बालब्रह्मचारिणी सुलभा

व गार्गी हों, जिन्होंने आध्यात्मिक साधना कीं उत्कृष्टतम भूमिका में स्थित होकर सांसारिक वासनाओं के अछूते अपने महान् विशुद्ध जीवनपुष्प को परमात्मा के ही श्री चरणों में समर्पित किया और चाहें गृहस्थ आश्रम आसीन महारानी पद्मिनी हो जिनके लिए इतना ही संकेत पर्याप्त है कि–

"पद्मिनि ! तेरे रूप को रह्यो अनूपम हाल ।
कै निरखेउ रावल रतन कै जौहर की ज्वाल ।।

धन्य है हिन्दू नारी को ! और उसके त्याग तपोमय जीवन को ।

पुनः और देखें:–

पति अनुराग लिए आग में समाई शीघ्र,
हाहाकार त्याग घोर घन की गरज में ।
हिन्दू-देवियों के बलिदान की कथाएं पढ़ो,
दुर्ग में चितौर के लिखी जो रज–रज में ।
ठाठ ठठरी की काश्मीर घाटियों में छोड़,
उड़के अकाश में मिली जो ईश अज में ।
चुनी जो चनाब में, विपत्ति झेल झेलम में,
रावी में रुधिर रखलाज सतलज में ।।

अब यहाँ पर विचारणीय प्रश्न यह है कि इन नारियों के इस महान् बलिदान के पीछे हेतु केवल विवाहसंस्कार मात्र ही है या उनका महान् तम पवित्र संकल्प ? यदि केवल विवाह ही से रक्षा हो जाती तो महाराजा भर्तृहरि की पत्नी महारानी पिंगला की राजमहल में शोचनीय दशा न होती इसलिए चाहे वह सर्ववासनाओं का परित्याग करके परमात्मा को ही वरण करने वाली हों और चाहे स्ववर्णाश्रम धर्म के अनुसार पति का वरण करने वाली हों। इन दोनों स्थितियों में उनके चरित्र की रक्षा केवल उनके तपोमय जीवन के उत्कृष्टतम संकल्पों से ही होगी । यह निर्विवाद सत्य है ।

बर्तमान समय में ऐसे अनेकों लेनिन और कार्लमार्क्स के अनुयायी उपदेशक हैं, जो आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ नारियो को सांसारिक बनने की सलाह देते हैं और विभिन्न युक्तियों से उन्हें निरुत्साहित करते हैं । तथा गृहस्थ आश्रम में स्थित पतिव्रत धर्मपरायण, पराम्बा सीता और सती अनुसुइया के चरण चिन्हों पर चलने वाली तपस्विनी नारियों को भी विभिन्न प्रकार की कल्पित युक्तियों और अशास्त्रीय प्रमाणाभाषों से उनके तपोमय जीवन में अश्रद्धा उत्पन्न करवा करके पाश्चात्य 'बहुपतिवाद' को प्रोत्साहित करके अधर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं ।

आज की इस भ्रामक परिस्थिति में उभय पक्षों में स्थित नारियों को स्वधर्म में अडिग रहने के लिए हमारा हृदय से सबल सकेत है कि महाराणा प्रताप की प्रतीज्ञा को स्मरण करो।–

चाहे सुधाकर उतर नभ से, अग्नि बरसाने लगे।
चाहे दिवाकर शीत हो निशि सौख्य सरसाने लगे ।।
चाहे मही को दे डुबा, तज सिन्धु निज मर्याद को।
चाहे भले ही भूल जाएं, सिंह भीषण नाद को ।।
चाहे गगन में सुमन सुन्दर, सुरभि युत खिलने लगें।
चाहे मयूरों से उरग गण, प्रेम से मिलने लगें ।।
तो भी नहीं पीछे पड़ेगा, पाँव वीर प्रताप का।
होने न दुँगा मैं कलंकित नाम अपने बाप का ।।

और इस प्रकार के विचारों को हृदय में संजोकर नित्य नवीन उल्लास से हृदय को आपूरित कर इस घोर कराल कलिकाल की झंझावातपूर्ण आपत्तियों के मध्य में भी भगवच्चरणारविन्दों का आश्रय लें। इसी परम प्रकाश, स्वयं प्रकाश स्वरूप चैतन्यदेव का ही आश्रय लेने पर सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार का विनाश हो सकता है। घोर कलिकाल के कराल अन्धकार की दवाई विवाह करना नहीं है। अपितु :—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

हरिनाम, हरिनाम केवल हरिनाम ही। नहीं है, नहीं है, कोई दूसरी गति कलिकाल में नहीं है।

अतः पूज्य श्री स्वामी जी से मेरा निवेदन है कि वह इस भगवदाज्ञा के विपरीत वे सिर-पैर की अलूल-जलूल बातें जो कि सन्त परम्परा के सदाचार से विपरीत हैं, करके आध्यात्मिक महिलाओं के अन्तःकरण में जो त्याग तपस्या और बलिदान के संस्कार हैं उन्हें नष्ट करने का प्रयास न करें। वलिक भगवान श्रीराम, हनुमन्त लाल एवं विशाल हृदय सन्त महात्माओं के आदर्शों का मन से वचन से एवं कर्म से अनुकरण करें। अन्यथा इस पवित्र भारत के प्रांगण में महान् तपस्विनी नारियों के दर्शन केवल चित्रों में ही होंगे। भारतमाता की गोद आध्यात्मिक वीराङ्गनाओं से खाली हो जायेगी। खोजने पर भी कहीं ऐसी माँ नहीं मिलेगीं, जो देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने पुत्र को सुमित्रा की भाँति त्याग, तपस्या और सेवा का उपदेश दे सके। अनेकों प्रयास करने के पश्चात् भी गार्गी सरीखी महान् विदुषी, तत्त्ववेत्ता महिला विभूति नहीं मिलेगी, जो राजा जनक सदृश तत्त्वज्ञानियों की सभा में याज्ञवल्क्य जैसे अद्वितीय विद्वान् से शास्त्रार्थ करके नारी जगत के गौरव को चमत्कृत करते हुए समस्त विश्व का ध्यान भारत की महिलाओं की ओर आकृष्ट कर सके। उभय भारती सरीखी विदुषी ललनाओं का दर्शन केवल पुस्तकों में कागज के टुकड़ों पर मिलेगा। आध्यात्मिक महिला निधि के दृष्टिकोण से भारत गारत हो जायगा। भारत के इस भविष्य को ध्यान

में रखते हुए स्वामी जी महाराज ! पुनः पुनः यही आपसे अनुरोध है कि ऐसे उपदेशों को बन्द करिये, जो आध्यात्मिक साधना में स्थित भारत के महत्त्वपूर्ण तपस्विनी महिला वर्ग विशेष के हृदय पर बज्राघात कर रहे हैं ।

और आगे स्वामी जी महाराज ! रही बात इस दुधमुँही बच्ची की, वह एक नहीं अनेकों भारतमाता की गोद में खेलने वाली ये आध्यात्मिक तपस्विनी दुधमुँही बच्चियाँ ही शास्त्रार्थ में, आध्यात्मिक जीवन के त्याग, तपस्यापूर्ण सुल्झाव में, विचार–विमर्श में आप सरीखे घृतमुँहे, अव्यवस्थित धर्माचार्यों को युक्ति, प्रमाण और अनुभव के द्वारा अवाक् करेंगी ।

यदि ऐसा कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पुरुषों की अपेक्षा भारतीय नारी की धर्मनिष्ठा, अध्यात्मनिष्ठा, बलिदान निष्ठा अधिक सच्ची और सफल सिद्ध हुई है । भक्ति मार्ग में, अध्यात्म मार्ग में जातिपाँति अथवा स्त्री पुरुष का भेद बनाकर किसी के ऊपर अभद्र व्यंग्यात्मक छीटाकशी करना और भेदबुद्धि उत्पन्न करके व कराके समाज में और देश में रागद्वेष की खाई तैयार करना यह घृणित कार्य किसी भी शास्त्र द्वारा मान्य नहीं है । जैसा कि भगवान स्वयं कह रहे हैं—

चाण्डालमपि मद्भक्तं नावमन्येत् बुद्धिमान् ।
अवमानात् पतन्त्येव नरके रौरवे नराः ॥

(महा० भा० अ० प० अ० ९२)

अर्थ :— चाण्डाल भी यदि मेरा भक्त हो तो भी बुद्धिमान् पुरुष को उसका अपमान नहीं करना चाहिए । अपमान करने से रौरव नरक में गिरना पड़ता है ।

इसके विपरीत भगवान को तो भक्ति ही प्रिय है वह भक्ति चाहे किसी ब्राह्मण में हो या अन्त्यज में, पुरुष में हो या स्त्री में । इसकी उन्हें अपेक्षा नहीं है इसी की महिमा का संकेत भगवान श्री राम ने शबरी से किया है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । माँनऊँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुण चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिय जैसा ॥

(रा० मा० अ० क० ३४/४-५-६)

अन्यत्र भी देखें :—

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव भजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ॥

(रा० म० ७-८७)

इस भगवदाज्ञा को समझकर जो कोई भी (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) भगवान के पुनीत चरणारविन्दों में अपना सर्वस्व समर्पित करके जाति–पाँति राग द्वेष, मैं–मेरी, तू–तेरी आदि के अभिमान से अपने को हटाकर एक मात्र परमात्मा में ही स्थित हो जाता है । ऐसे भगवद्भक्त पर काल अपना प्रभाव नहीं डाल पाता ।

काल धर्म नहिं व्यापहिं ताही । रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया । नट सेवकहिं न व्यापइ माया ॥

इसके अतिरिक्त यदि कोई साधक अपने लक्ष्य में वर्तमान जन्म में सफल नहीं होता है, तो भी कोई हानि नहीं है । उसके लिए भगवान कहते हैं—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरूनन्दन ॥

[श्रीमद्भगवद्गीता ६/४१-४२-४३]

अर्थ:—शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है । अथवा [वैराग्यवान पुरुष उन लोकों में न जाकर] ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है । परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है [सो] संसार में निःसन्देह अति दुलर्भ है । यहाँ उस पहले शरीर में साधन किए हुए बुद्धि के सयोग को अर्थात् समत्वबुद्धियोग के संस्कारों को [अनायास ही] प्राप्त हो जाता है । और हे कुरु नन्दन ! उसके प्रभाव से फिर [अच्छी प्रकार] भगवत्प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न करता है ।

इस प्रकार भगवान ही अपने आश्रित की कराल कलिकाल से सदैव रक्षा करते है ।

"प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं" क्योंकि
"प्रभु मूरति कृपामयी है ।"

ॐ उपशम्

दण्ड-संन्यास दुराग्रह और उसका उत्तर

पुनः पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य श्री निरञ्जनदेव तीर्थ ने लोक वेद विरुद्ध सिद्धान्त स्थापित करते हुए जो अपने अध्ययन के गाम्भीर्य का परिचय दिया । वह भी भारत के विद्वान् सन्त महात्माओ के लिए कम हास्यास्पद नही रहेगा यथा—स्वामी जी महाराज हमारी ओर संकेत करते हुए बोले—

"स्वामी जी महाराज ! पता नहीं आप स्वामी हैं, संन्यासी हैं या ब्रह्मचारी हैं क्योंकि आपके हाथ में दण्ड नहीं हैं इसलिए हम आपको संन्यासी नहीं समझ सकते हैं । शिखा-सूत्र हो तो हम ब्रह्मचारी समझ सकते हैं । वानप्रस्थ का कलियुग में निषेध है । विवाह किया हो तो

गृहस्थ समझें। अगर आप कहें कि बगैर संन्यास के भी दण्ड होता हैं; तो भगवान शंकराचार्य ने दण्ड क्यों लिया? उनके जितने शिष्य है सबने दण्ड लिया और जीवन पर्यन्त भर भगवान शंकराचार्य ने दण्ड परित्याग नहीं किया। दण्ड के परित्याग का कहीं विधान भी नहीं है। इसलिए आपसे हमारा निवेदन है कि आप कृपा करके सनातनधर्म के ग्रन्थ पढ़िये और जिन बातों का आपको ज्ञान नहीं है, किसी सद्गुरू से पूछिये। संन्यास लेना चाहते हैं तो पहले आप विधिपूर्वक किसी सद्गुरू से दण्ड संन्यास लीजिए, तब आप संन्यासी हो सकते हैं।"

"और आप लोगों से कहते हैं ऐसे महात्माओं का भाषण मत सुनिए। उनसे कहिए बन्द। आप गलत बोल रहे हैं। इन आयोजकों से हम कहते हैं, सोच-समझकर के उनकी परीक्षा लेकर के और फिर मंच पर बोलने के लिए किसी आदमी को तैयार कीजिए। आजकल सनातनधर्म का मञ्च ऐसा छिछला हो गया। दर्जा चार पास नहीं और वह भी बाबा जी बनकर के उपदेश करने लगे। सनातन धर्म के मञ्च पर जिसको कुछ नहीं मालूम, पूछो पहले तुमने संस्कृत पढ़ी है, मनुस्मृति पढ़ी है याज्ञवल्क्य स्मृति पढ़ी है, हिन्दू धर्म का उपदेश देने चले हो, अभी तक तुलसीकृत रामायण भी शुरू से आखिर तक पढ़ी है या नहीं। कम से कम इतनी परीक्षा लेकर के और फिर सनातनधर्म के मञ्च पर प्रवचन करने के लिए आओ।"

स्वामी जी महाराज ने अपने सम्पूर्ण वक्तव्य में जिस भाषा, शैली एवं भावों का आश्रय लिया है वह कम सोचनीय नहीं है। परन्तु यहाँ तो पूर्णरूपेण विषयान्तर करके मानवता और साधुता की मर्यादाओं में आग लगाकर के विपक्ष के खण्डन में शास्त्रीय पद्धति का आश्रय न लेकर, व्यक्तिगत कीचड़ उछालते हुए, अशास्त्रीय ढ़ग से मात्र वितण्डावाद के द्वारा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयास किया है। विवाद का विचारणीय विषय चल रहा था क्या, और स्वामी जी पहुँचे कहाँ जाकर! फिर भी कोई बात नहीं, जिस किसी भी विषय को स्थापित करके हमसे 'टू दि प्वाइन्ट' उत्तर माँगेंगे वह तो देना ही होगा। मन्दिर या कूप के पास खड़े होकर कोई भी व्यक्ति जिस प्रकार की ध्वनि करेगा उसे अपनी ध्वनि के अनुरूप ही प्रतिध्वनि प्राप्त होगी। उस प्रतिध्वनि का उत्तरदायित्व ध्वनिकर्ता के ही ऊपर होता है। यह नियम है। अब स्वामी जी के द्वारा स्थापित किए हुए उपरोक्त संन्यास सम्बन्धी भ्रमात्मक वाक्य जन्य श्रुति सिद्धांत विपरीत कल्पनाओं का क्रमशः शास्त्रोक्त विधि से निराकरण किया जायेगा

ध्यान से पढ़ें और समझें:-

जहाँ तक स्वामी जी ने यह कहा कि, "आपके हाथ में दण्ड नहीं है इस लिए हम आपको संन्यासी नहीं समझ सकते हैं" इस प्रकार के वाक्य बहुत से स्थूल बुद्धि वाले शास्त्र एवं सन्त लक्षणों से अनभिज्ञ लोग ही बोला करते हैं। स्वामी जी के मुख से यह वाक्य आध्यात्मिक महापुरूषों की परम्परा का ज्ञान न होने के कारण ही निकला है। ब्रह्मा के सृष्टि निर्माण के दिन से लेकर आज तक दण्डरहित परमहंस, अवधूत महापुरूषों की अजस्र, अखण्ड शृंखला चली आ रही है जिसके कि आदि प्रवर्तक सनकादिक महर्षि रहे हैं। इस परम्परा में आज भी सहस्रों वीतरागी, त्यागी, संन्यासी, परमहंस अवधूत महापुरुष हैं जिनके पास दण्ड नहीं है। स्वामी जी तो इनमें से किसी को भी नहीं समझ पायेंगे। तो क्या स्वामी जी के न समझ पाने के कारण ये सभी परमहंस, अवधूत; संन्यासी नहीं रहेंगे ?

स्वामी जी महाराज ! दण्ड सन्यास का स्वरूप लक्षण नही है, अपितु तटस्थ लक्षण है; जो कि कभी रहता है और कभी नहीं रहता है। कहीं रहता है और कहीं नहीं रहता है। तटस्थ लक्षण को स्वरूप लक्षण समझ लेना विद्वान् का काम नहीं है। अतः संन्यास का मुख्य लक्षण दण्ड नहीं है बल्कि "त्याग एव हि संन्यासः।"

जहाँ तक आपने भगवान भाष्यकार आद्यशकराचार्य की चर्चा की है, वह महान परमहंस, स्थितप्रज्ञ, जीवनमुक्त, ब्रह्मनिष्ठ, अधिकारी महापुरुष आपके मस्तिष्क की पहुँच से परे हैं। आप अपने इस कुतर्क के कीचड़ में उन्हें न खींचे यह उनके ऊपर आपकी महती कृपा होगी। जैसी कि आपने कल्पना की है; ऐसे ही सभी सन्त अपने-अपने सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्य के वाह्य विशिष्ट चिह्नों मात्र को लेकर सन्त का लक्षण करने लगे और उन विशिष्ट चिह्न मे रहित सन्त को सन्त न समझें तो ऐसी अवस्था में सन्त समाज की मानवता, साधुता, आध्यात्मिकता एवं मैत्री आदि भावों की क्या दशा होगी ? थोड़ा कल्पना करके देखें। वही दशा सर्वत्र होने लगेगी जो आपके मिथिलत शुभागमन पर हुई।

अतः आइये अब अपने मुख्य विवादास्पद विषय पर। यहाँ पर भी जो आप अशुद्ध वाक्य बोले हैं उसे सुधार लिया जाय यथा- 'अगर आप कहें कि बगैर संन्यास के भी दण्ड होता है' इसको इस प्रकार बोलना चाहिए था 'अगर आप कहें कि बगैर दण्ड लिए भी संन्यास होता है।'

यहाँ पर विवादास्पद विषय यह है कि बिना दण्ड लिए संन्यास हो सकता है या नहीं ? दूसरा-दण्ड लेकर जीवन में त्यागा जा सकता है या नहीं ? मैं कहता हूँ कि बिना दण्ड लिए भी सन्यास का विधान है तथा दण्ड लेकर स्थिति और इच्छानुसार त्यागने का भी विधान है। तद्यथा·

"प्रणवेन शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीतं छित्वा वस्त्रमपि भूमौवाप्सु वा विसृज्य ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्यनेन जात रूपधरो भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणवव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति मन्द्रमध्यमतार ध्वनिभिस्त्रिवारं त्रिगुणीकृत प्रैषोच्चारणं कृत्वा प्रणवैकध्यानपरायणः सन्नभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यूर्ध्वबाहुर्भूत्वा ब्रह्माहमस्मीति तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थस्वरूपानुसंधानं कुर्वन्नुदीचीं दिशं गच्छेत् । जातरूपधरश्चरेत् एष संन्यासः तदधिकारी न भवेद्यदि ।" [परमहंस परिव्राजकोपनिषद्]

अर्थः—प्रणव उच्चारणपूर्वक शिखा को उखाड़कर, यज्ञोपवीत को काटकर, वस्त्र को भूमि या जल में छोड़कर ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा' इस मन्त्र से नग्न होकर स्वरूप का ध्यान करता हुआ, फिर पृथक् प्रणव और व्याहृतिपूर्वक मन से और वाणी से 'मैंने सन्यास किया, मैंने सन्यास किया, मैंने संन्यास किया' इस प्रकार मन्द, मध्यम और उच्चध्वनि से तीन बार तीन गुणा प्रैषमन्त्र का उच्चारण करके, एक प्रणव के ही ध्यान परायण होकर सब भूतों को अभय मानकर 'स्वाहा' इस प्रकार कहकर ऊँची भुजाएँ करके 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य के अर्थ से स्वरूप का अनुसंधान करता हुआ उत्तर दिशा को चला जावे । शुद्ध होकर विचरे यह संन्यास है । यदि उसका अधिकारी न हो तो........——————......

"गृहस्थ प्रार्थनापूर्वकमभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते सखामा गोपायौजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेत्यनेन मन्त्रेण प्रणवपूर्वकं सलक्षणं वैणवं दण्डं कटिसूत्रं कौपीनं कमण्डलुं विवर्णवस्त्रमेकं परिगृह्य सद्‌गुरूमुपगम्य नत्वा गुरूमुखात्तत्त्वमसीति महावाक्यं प्रणवपूर्वकमुपलभ्य............................

[अथर्ववेदी परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्]

अर्थः-गृहस्थ को प्रार्थना पूर्वक सब भूतों को अभयदान कर, हे सखा ! मेरे बल की रक्षा कर, तू सखा है, तू वृत्रासुर को मारने वाला इन्द्र का वज्र है' मुझको शान्ति देने वाला हो, जोपाप हो उसका निवारण कर । प्रणव सहित इस मन्त्र से लक्षण सहित बाँस के दण्ड को, कटिसूत्र को, कौपीन को, कमण्डलु को नीचे एक वस्त्र को ग्रहण करके, सद्‌गुरू के पास जाकर, नमस्कार करके गुरूमुख से 'तत्त्वमसि' महावाक्य को प्रणव सहित प्राप्त करके————।

उपरोक्त प्रमाण के अनुसार जो 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ स्वरुप ब्रह्मसच्चिदानन्द का अभिन्नरूप से अनुसंधान करने में असमर्थ है. इस उच्चकोटि के अभ्यास का अधिकारी नहीं है । ऐसी अवस्था में श्रुति उसे दण्ड लेने के लिए संकेत कर रही है ।

अब उदाहरणस्वरूप दण्ड आदि आश्रम चिन्ह रहित जो परमहंस संन्यासी हुए हैं उन्हें देखें—

तत्र परमहंसानाम संवर्तकारूणिश्वेतकेतु दुर्वासा ऋभुनिदाघजड़भरत दत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयोऽव्यक्त लिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्त वदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं जलं पवित्रं शिखां यज्ञोपवतीति च इत्येतसर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् ॥

[जाबालोपनिषद् ६]

अर्थ:—जो परमहंस सन्यासी हैं उनमें से असंवर्तक, आरूणि, श्वेतकेतु दुर्वासा ऋभु, निदाघ, जडभरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि परमहंस वर्णाश्रम के सब चिन्हों से रहित थे। उनके आचार-विचार जानने में न आवें ऐसे थे। वे उन्मत भाव से रहित होकर भी उन्मत्त के समान रहते थे। संन्यासियों को त्रिदण्ड, कमण्डलु, छींका, जल से शुद्ध ऐसा पात्र, शिखा और यज्ञोपवीत इन सबका 'भूः स्वाहा' कर जल में त्याग करके आत्मा को ढूँढना चाहिए।

इन उपरोक्त महापुरुषों ने दण्ड ग्रहण किया था यह स्वामी जी महाराज सिद्ध करें। इन महापुरुषों के जीवन से तथा इस श्रुति प्रमाण के द्वारा यह सिद्ध होता है कि दण्ड ग्रहण करना संन्यास का मुख्य लक्षण नहीं है। संन्यास का मुख्य चिन्ह तो त्याग ही है 'जैसे बिन विराग संन्यासी।' इसी श्रुति में दण्ड त्यागने के लिए भी आदेश है। इस विषय में और भी श्रुतियों के प्रमाण देखिए—

सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माणं च हित्वाकौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय लोकस्यैवोपकारार्थाय च परिग्रहेत् तच्च न मुख्योऽस्ति कोऽयं मुख्य इति च यदयं मुख्यः। न दण्डं न कमण्डलुं न शिखां न यज्ञोपवीतं.........................।

[परमहंसोपनिषद्]

अर्थ:—सब कर्मों का त्यागकर, तथा इस ब्रह्माण का त्याग करके कोपीन, दण्ड और चद्दर अपने शरीर के भोग के लिए और लोगों के कल्याण के लिए धारण करना, परन्तु यह संन्यास दीक्षा मुख्य नहीं है। तब मुख्य संन्यास दीक्षा किस प्रकार की है? उसके विषे कहा है, न दण्ड, न कमण्डलु, न शिखा न यज्ञोपवीत.............................।

यहाँ पर श्रुति भगवती स्वयं दण्ड आदि का विधान बताकर बाद में संकेत करती हैं 'तच्च न मुख्योऽस्ति' पुनः आगे प्रश्न होता है 'कोऽयं मुख्य इति च' तब मुख्य संन्यास दीक्षा किस प्रकार की है? आगे स्वयं श्रुति ही समाधान करती है 'यदयं मुख्यः न दण्डं न कमण्डलु न शिखा न यज्ञोपवीतं' स्वामी जी महाराज! जरा ध्यान से इन उपरोक्त शब्दों को पढ़िये।

पुनः देखिये श्रुति भगवती का उद्घोष क्या है—

परमहंसो भूत्वा स्वरुपानुसंधानेन सर्वप्रपञ्चं विदित्वा दण्ड कमण्डलु

कटिसूत्र कौपीनाच्छादनं स्वविध्युक्त क्रियादिकं सर्वमप्सु संन्यस्य..............

[तुरीयातीतोपनिषद्]

अर्थ:—परमहंस होकर स्वरूपानुसंधान से सब प्रपञ्च को जानकर दण्ड, कमण्डलु, कटिसूत्र, कौपीन, आच्छादन और विधि अनुसार कही हुई सब क्रियादिक का जल में त्याग करके.......................

यदालंबुद्धिभवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जात-रूपधरश्चरेत् । [परमहस परिव्राजकोपनिषद्]

अर्थ:—जब अलबुद्धि होवे तब उस-उसके मन्त्र सहित कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड कमण्डलु सबको जल में छोड़कर कुटीचक या बहूदक या हस या परमहंस दिगम्बर होकर विचरे ।

दण्डाँल्लोकांश्च विसृजेदिति होवाच । [आरूणिकोपनिषद् २]

अर्थ:—दण्ड और लोक का त्याग करे ।

सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च सर्वं कौपीनं दण्डमाच्छादनं च त्यक्त्वा...............। [नारद परिव्राजकोपनिषद् ३/८६]

अर्थ:—सब कर्मों को त्यागकर 'यह सब ब्रह्माण्ड ही उसकी लंगोटी है' ऐसा समझकर दण्ड और लंगोटी का त्याग करे ।

त्रिदण्डं शिक्य पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्य कटिसूत्रं च कौपीनं दण्ढं वस्त्रं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् । [नारद परिव्राजकोपनिषद् ३/६]

अर्थ:—त्रिदण्ड, छींका, पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और कोपीन यह सब जल में 'भूः स्वाहा' कहकर त्याग दे । कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड, वस्त्र और कमण्डलु-यह सब जल में प्रवाहित करे दिगम्बर होकर विचरण करे ।

परमहंसादि त्रयाणां च कटिसूत्रं च कौपीनं न वस्त्रं न कमण्डलुर्न दण्डः।

[नारद परिव्राजकोपनिषद् ४]

अर्थ:—परमहंस तुरीयातीत और अवधूत ये करधनी, लगोटी, वस्त्र, कमण्डलु दण्ड कुछ भी नहीं रखते ।

त्रिदण्डयपि स्वपरिग्रह परित्यज्य परमहंसो भवेत् तथा च स्मृति—

त्रिदण्डं कुण्डिका चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ।
जन्तूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुः परित्यजेत् ॥

बोधायनः—तस्य त्याग विधिः । अरण्यं गत्वा शिखामुण्डः काषायवासा वाङ्मनः कर्मदण्डैर्भूतानामद्रोही यज्ञोपवीतं वेदं त्रिदण्डं कमण्डलुं पात्रं परित्यज्य विसृज्य सर्वकर्माणि सर्वसहः सर्वसङ्गनिवृतः प्रसन्नमना सुखासीनो

विश्वरूप मात्मानं चिन्तयेदिति ।

[विश्वेश्वर सरस्वती कृत यतिधर्म संग्रह पे० नं० १८]

अर्थ:—त्रिदण्ड, कमण्डलु, सूत्र [यज्ञोपवीत] खप्पर, जन्तुओं का वारण और वस्त्र इन सबका भिक्षु परित्याग करे।

बौधायन महर्षि जी ने त्याग विधि में लिखा है-अरण्य में जाकर शिखा सहित मुण्डित, कषायवस्त्रधारी, वाणीमन और कर्म रूप दण्डों से भूतों के साथ द्वेष न करने वाला, यज्ञोपवीत, वेद, त्रिदण्ड, कमण्डलुपात्र का परित्याग कर एवं सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग करे।

यथा विविदिषुः परमहंसः शिखोयज्ञोपवीताभ्यां रहितो मुख्यस्तथा योगी दण्डाच्छादनाभ्यां रहितः सन्मुख्योभवति ।

[जीवन्मुक्तः विवेक विद्वत्संन्यास प्रकरणम्]

अर्थ:-जैसे विविदिषा संन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत रहित मुख्य है, वैसे योगी परमहंस दण्ड और वस्त्र रहित मुख्य है।

न दुःखहानयेऽप्यस्य साधनानां परिग्रहः ।
बुभुक्षादिनिषेधेन निर्दुःखात्माऽवबोधनाद् ॥
विदुषः कृतकृत्यत्वात् स्मार्त संन्यासलिङ्गकम् ।
भाष्य आश्रम मात्रैकशरणानामितीरितम् ॥

[वृहदारण्यक वार्तिक सारः ३/५/४६–४७]

अर्थ:-सुख और दुःख निवृत्ति की इच्छा की विरह से परिग्रहाभाव स्वतः प्राप्त होता है, क्योंकि परिग्रह स्वयं पुरुषार्थ नहीं है किन्तु पुरुषार्थ का साधन है। फलेच्छा की निवृत्ति होने पर उसके उपाय में निवृत्ति स्वाभाविक है 'विदुषः' इत्यादि ।

शंका-यदि विद्वान् सर्वथा परिग्रह से उदासीन है, तो दण्ड का भी उसे परिग्रह नहीं करना चाहिए।

समाधान-हाँ, कृतकृत्य विद्वान् दण्ड का भी त्याग करता है।

शंका-दण्ड भी स्मार्त सन्यास का लिङ्ग है, अतः उसका त्याग करना अनिष्टापत्ति है।

समाधान-नही, इष्टापत्ति ही है, अनिष्टापत्ति नहीं है।

शंका-'त्रिदण्डेन यतिश्चरेत्' इत्यादि स्मृति बोधित लिङ्ग से रहित यति कैसे हो सकता है?

समाधान-अव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचाराः' इत्यादि श्रुतियों से विद्वान् संन्यासी लिङ्ग से [दण्ड आदि से] रहित ही होता है। वस्तुतः स्मृति आदि शास्त्र अविद्वद्विषयक ही हैं, अतः विधि और निषेध भी अविद्वत् संन्यास विषयक ही हैं। विद्वान् तो उक्त विधि-निषेध से परे है, अतएव भाष्यकार ने स्पष्ट ही कहा है

कि 'स्मार्तलिङ्गमाश्रम मात्रशरणानां जीवनसाधन पारिव्राज्यव्यञ्जकम्' इत्यादि । अर्थात् ज्ञान के विना केवल लिङ्गधारण जीवननिर्वाह के लिए ही होता है । दण्ड आदि के धारण से समुचित आदर के साथ भिक्षा मिलेगी, इस बुद्धि से ज्ञानोपयोगी व्यापार से शून्य दण्ड आदि का धारण करते हैं।

[महामहोपाध्याय श्री हरिहर कृपालुद्विवेदी कृत टीका]

पुनः आगे ध्यानपूर्वक पढ़ें । सर्वशास्त्रपारावार यति चक्र चूड़ामणि श्रीमत् स्वामी विद्यारण्य जी महाराज क्या संकेत कर रहे हैं:-

यथा विविदिषुः परमहंसः शिखायज्ञोपवीताभ्यां रहितो मुख्यस्तथा योगी दण्डाच्छादनाभ्यां रहितः सन्मुख्यो भवति । दण्डस्य वैणवत्वादि-लक्षणमाच्छादनस्य कन्थात्वादि लक्षणं च परीक्षितुं दण्डादिकं सम्पादयितुं रक्षितुं च चित्ते व्यापृत्ते सतिचित्तवृत्तिनिरोध लक्षणो योगो न सिद्धयेदिति तच्च न युक्तम् । न हि वर विघाताय कन्योद्वाहः इति न्यायात् ।

[जीवन्मुक्ति विवेकः विद्वत्संन्यास प्रकरणम्]

अर्थ:-जैसे विविदिषा संन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत रहित मुख्य है, तैसे योगी परमहंस दण्ड और वस्त्र रहित मुख्य है । क्योंकि दण्ड बाँस का है, या अन्य काठ का है, इस भाँति दण्ड की परीक्षा करने के लिए, वैसे ही आच्छादन भी कन्था रूप है ? या अङ्गरखा के समान है ? इस रीति आच्छादन की परीक्षा करने के लिए, वैसे ही दण्ड मिलने के लिए और उसकी रक्षा के लिए योगी की वृत्ति बार-बार बाहरी व्यापार वाली होने से उसका मुख्य कर्तव्य जो चित्त वृत्ति का निरोध रूप योग है सो सिद्ध नहीं हो सकता । जैसे कन्या का ब्याह वर के मारने के लिए नहीं किन्तु उसकी वंश वृद्धि के लिए है । तैसे ही परमहंस आश्रम धारण किया जाता है, वह केवल चित्त वृत्ति के निरोध के लिए ही धारण करने में आता है । किन्तु चित्त वृत्ति के विक्षेप के लिए धारण करने में नहीं आता । दण्ड आदिक धारण करने से तो, ऊपर बताए हुए प्रमाण से चित्त विक्षेप को प्राप्त होता है, इसलिए दण्ड आदिक ग्रहण यह परमहंस के लिए मुख्य विधि नहीं ।

[श्री स्वामी विद्यारण्य जी, जीवन्मुक्ति विवेक]

पुनः श्रीमत् स्वामी विद्यारण्य जी महाराज वहीं पर दण्ड आदि की उपयोगिता के विषय में लिखते हैं-

स्वशरीरोपभोगो नाम कौपीनेन लज्जा व्यावृत्तिः । दण्डेन गोसर्पाद्युपद्रव परिहारः । आच्छादनेन शीतादि परिहारः । चकारात्पादुकाभ्या-मुच्छिष्टदेशस्पर्शादि परिहारं समुच्चिनोति ।

[जीवन्मुक्ति विवेक विद्वत्संन्यास प्रकरणम्]

अर्थ:-कौपीन से लज्जा की रक्षा होती है, दण्ड से बैल, सर्प आदि के उपद्रवों से बचता है, आच्छादन से शीत आदि दुःखों का परिहार होता है और पादुका

धारण करने से उच्छिष्ट भूमि का स्पर्श नहीं हो सकता । इन सब को शरीर का उपभोग कहना ।

दण्ड धारण करने का तात्पर्य क्या है ? इसका भी श्रुति भगवती निर्णय करती हैं यथा—

न दण्ड धारणेन न मुण्डनेन न वेषेण न दम्भाचरेण मुक्तिः । ज्ञानदण्डोधृतो येन एक दण्डी स उच्यते । काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः । स याति नरकान्घोरान्महारौरव संज्ञितान् ।।

[नारद परिव्राजकोपनिषद् ५/२]

अर्थ:—दण्ड धारण करने से, सिर मुड़वाने से, वेश धारण करने से या दम्भ करने से मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए, जिसने ज्ञान का दण्ड धारण किया हो वही एक यति है ऐसा जानो । परन्तु ज्ञान हीन होते हुए किसी सर्वभक्षी ने काठ का दण्ड धारण कर लिया हो तो ऐसा पुरूष घोर रौरव नरक को प्राप्त होगा ।

एवं सति मौनादीनां वागादि दमनहेतुत्वाद्यथा दण्डत्वं तथैवाज्ञान-तत्कार्यदमनहेतोर्ज्ञानस्य दण्डत्वम् । अयं ज्ञानदण्डो येन परमहंसेन धृतः स एव मुख्य एक दण्डीत्युच्यते । मानसस्य ज्ञानदण्डस्य कदाचिच्चित्त विक्षेपेण विस्मृतिः प्रसज्येतेति तन्निवारणार्थं स्मारकः काष्ठदण्डोध्रियते । तदेतच्छास्त्रार्थ रहस्यम् बुद्धावेषमात्रैण पुरूषार्थसिद्धिमभिप्रेत्य काष्ठदण्डो येन परमहंसेन धृतः स पुरूषो बहुविधसन्तापोपेतत्वाद्धोरान्महारौरव-संज्ञकान्नरकानाप्नोति ।

[श्रीमत्स्वामी विद्यारण्यकृत जीवन्मुक्ति विवेक वि० सं० प्र०]

अर्थ:—'ऐसा है इसलिए जैसे मौन आदि, वाणी आदि के दमन का कारण होने से दण्डरूप हैं, वैसे ही ज्ञान भी अज्ञान और उसके कार्य को दमन करने वाला होने से दण्डरूप है । यह ज्ञानदण्ड जिस परमहंस ने धारण किया है वही मुख्य एकदण्डी कहलाता है । मानस दण्ड का किसी समय चित्त के विक्षेप द्वारा विस्मरण होने का प्रसङ्ग आ पड़े तो, उसके स्मरण के लिए स्मारक चिह्न रूप से काष्ठदण्ड धारण किया जाता है । इस भाँति शास्त्र के तात्पर्य समझे बिना केवल वेषमात्र से जिसने काठ का दण्ड धारण किया हो यह परमहंस अनेक प्रकार के संताप युक्त होने से घोर महारौरव नरक में जाता है ।

एवं च सति ज्ञानदण्ड काष्ठदण्डयोर्यदन्तरमुत्तमत्वाधमत्वरूपं तद्विद भवगत्योत्तमं ज्ञानदण्डं यो धारयति स एव मुख्यः परमहंस इत्यभ्युपगन्तव्यम्।

[श्रीमत्स्वामी विद्यारण्यकृत जीवन्मुक्ति विवेक द्वि० सं१ प्र०]

अर्थ:—इस प्रकार ज्ञानदण्ड की उत्तमता और काष्ठदण्ड की अधमता समझ के जो ज्ञानदण्ड धारण करता है वही मुख्य परमहस है ऐसा मानना चाहिए ।

इस प्रकार संन्यास विधायक शास्त्रों, उपनिषदों में वेणुदण्ड रहित संन्यास का और 'वेणुदण्ड त्यागने का विधान दिखाया गया । अब लोक में भी दर्शन करे यथा-प्राचीन काल के सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव, जड़भरत आरुणि आदि । इस युग में भी श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि रमण आदि अनेकों ऐसे महापुरूष रहे जिनका संन्यास वेणुदण्ड रहित ही था । वर्तमान समय में भी उपरोक्त महापुरूषों के ही समान उन्हीं की परम्परा में अनेकों वेणु-दण्ड रहित संन्यासी हैं यथा-गिरि, पुरी आदि दसनामियों में भी । भारत में विभिन्न शाखाओं के महामण्डलेश्वरों की जो परम्परा है । इसमें लगभग सभी वेणु दण्ड रहित ही परमहंस संन्यासी है । इसके अतिरिक्त भारत में जो अन्यान्य अनेकों सम्प्रदाय हैं उन सभी सम्प्रदायों में एक से एक त्यागी, विरक्त, भगवन्निष्ठ परम-हंस वृत्ति वाले महापुरूष हैं उन सबको आप क्या कहेंगे ?

अतः स्वामी जो महाराज ! इस दण्ड दुराग्रह को छोड़कर पुनः श्रुति भगवती का डिमडिम घोष देखो, पढ़ों और मनन करो—

"तच्च (दण्डाच्छादनादि) न मुख्योऽस्ति । कोऽयं मुख्यः इति च यदयं मुख्यः न दण्डं न कमण्डलुं न शिखां न यज्ञोपवीतं न चाच्छा-दनं चरति परमहंसः"

इस प्रकार लोक और वेद में अनेकों दण्डरहित सन्यास के प्रमाण हैं जिनको यदि संग्रह किया जाये तो एक विशाल काय ग्रन्थ का स्वतन्त्र निर्माण हो जायेगा । फिर भी अपने को विद्वान् समझने वाले श्री स्वामी जी महाराज ! आपका हमसे यह कथन है कि, "आपके हाथ में दण्ड नहीं है इसलिए हम आपको संन्यासी नहीं समझ सकते हैं," "दण्ड के परित्याग का कहीं विधान भी नहीं है ।" इस प्रकार के वाक्य तो वे ही लोग बोल सकते हैं जिन्होंने स्वप्न तक में शास्त्र का दर्शन नहीं किया । परन्तु आप सरीखे महापुरूष, जिनको कि विद्वानों ने वैदिक मन्त्रों से अभिषिक्त करके एक महान पद पर बैठाया है और उस पीठ पर से, परिव्राजकाचार्य जगद्गुरू के सिंहासन से आप............ ......! और आपके मुख से ऐसी बात...............!

ॐ उपशम

इस स्थिति में मैं आपके महान् हित के लिए एक सुझाव देता हूँ कि शास्त्रों में उपनिषदों में संन्यास के लिए क्या लिखा है ? सन्यास किसे कहते हैं ? संन्यास कितने प्रकार का है ? संन्यास का वाह्यस्वरूप क्या है ? संन्यास का आन्तर स्वरूप क्या है ? सन्यास का सूक्ष्म स्वरुप क्या है ? संन्यास का प्राण क्या है ? तथा संन्यासी का क्या तटस्थ लक्षण है और क्या स्वरूप लक्षण है ? संन्यासी कैसे चलता है ? कैसे बैठता है ? कैसा बोलता है तथा उसके लोक व्यवहार एवं चेष्टाओं से कैसे विश्व का कल्याण होता है ? और कैसे उसके मुख से विचार पूर्वक सत्य एवं मधुर वचन निकलते हैं, जिससे कि लोक में एक महान् आध्यात्मिक

शान्ति की स्थापना होती है ? स्वामी जीं महाराज ! इन उपरोक्त बातों को अभी शास्त्रों में पढ़िये और स्थितप्रज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषों के चरण में निरभिमानता पूर्वक बैठकर :—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४/३४)

अर्थ :— तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम (तथा) सेवा [और] निष्कपट भाव से किए हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जाने। वे मर्म को जानने वाले ज्ञानी जन [आपको] उस ज्ञान का उपदेश करेंगे ।

तत्त्वज्ञान का उपदेश प्राप्त करें तत्पश्चात् शास्त्रोक्त किसी महापुरुष से मुख्य संन्यास लेकर जैसा कि श्रुति ने संकेत किया है, "यदयं मुख्यः न दण्डं न कमण्डलुं न शिखां न यज्ञोपवीत न चाच्छादनं चरति परमहंसः" ब्रह्माभ्यास करते हुए शुकदेव, ऋषभदेव, जड़भरत आदि महापुरुषों की भाँति अपने अवशेष जीवन का सदुपयोग करें । जैसे कि महान् विद्वान् एवं शास्त्र विधि परायण तर्कशास्त्री श्रीमत् मधुसूदन सरस्वती जी महाराज ने अपने जीवन में आध्यात्मिक स्थिति की नीरसता का अनुभव करते हुए एक परमहंस संन्यासी से मिले और उन परमहंस संन्यासी की भक्ति पूर्ण भावों से ब्रह्मानुसंधान करने की सलाह को मानकर ब्रह्मानन्द रसामृतसिन्धु स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का भक्त्यानुसंधान पूर्वक अहर्निश अनुचिन्तन किया । बाद में ऐसी विचित्र अलौकिक स्थिति का अनुभव करके स्वयं का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है :—

अद्वैतवीथीपथिकै रुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन दासी कृता गोपवधूविटेन ।।

अर्थ :— अर्थात् यह ठीक है कि अद्वैतपथ के पथिक हमारी उपासना [सेवा-पूजा] करते हैं और हम मोक्षपदरूपसिंहासन पर भी आरूढ़ हो चुके हैं तथापि गोपाङ्गनाओं के प्रेमी किसी एक शठ ने हमें बलात्कार से अपना चेरा बना लिया है । श्री मधुसूदन सरस्वती जी में शास्त्रनिष्ठा तज्जन्य ब्रह्मनिष्ठा और प्रेमनिष्ठा पूर्ण थी । जिसके प्रमाण स्वरूप उनके दो महान ग्रन्थ हैं 'अद्वैत सिद्धि' एवं 'भक्ति रसायन' ।

पुनः हृदय को शुद्ध करने के लिए एवं विद्वान् महापुरुषों के महान हृदय के विशालभावों को समझने के लिए अभिनव शंकराचार्य श्रीमत्स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा प्रणीत 'भक्ति सुधा' नामक ग्रन्थ में "माँ के श्री चरणों में" नामक शीर्षक वाले लेख को ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त से एकान्त में सर्वविकारों से शून्य होकर पढ़े, और देखें, अनुभव करें कि महापुरुषों की स्थिति और हृदय क्या होता है ? दुःख है कि आज वह महापुरुष हमारे बीच में पार्थिव शरीर से नहीं हैं । अन्यथा उन्हीं के चरण सानिध्य में बैठकर हम आपको उन्हीं के द्वारा

अपना परिचय दिलवाकर आपका समाधान करवा देते और आपका भी पूर्ण रूपेण समाधान हो जाता । परन्तु फिर भी आपसे करबद्ध निवेदन है कि उपरोक्त संकेतों एवं महापुरुषों के जीवन और उनकी स्थिति के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करने की दिशा में अग्रसर होवें । यह आपके जीवन के अन्तिम चरण में आपके लिए महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है । उसके सम्पन्न होने पर ही 'बड़े भाग्य मानुष तनु पावा' यह सिद्धान्त आपके जीवन में सार्थक हो सकेगा ।

परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि स्वामी जी महाराज ! आपको इन श्रुति सिद्धान्तो का ज्ञान भी कैसे होगा ? यह हमारी प्रार्थना स्वीकार भी कैसे करेंगे ? क्योंकि आप तो प्रस्थानत्रय (गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र) के पठन-पाठन, चिन्तन मनन एवं निदिध्यासन के स्थान पर व्यंग्य और हास्यरस के चुट कुले उड़ाकर समाज को प्रसन्न कर रहे हैं यथा :—

मूड़ मुड़ाये तीन गुण, सिर की मिट गई खाज ।
खाने को बढ़िया मिले, लोग कहें महराज ।।

इस प्रकार शास्त्र असंगत और शिष्टाचार व्यवहार विरुद्ध असत्य प्रवचन देकर जनता और सन्तों के मध्य एक विद्वेषात्मक भाव पैदा करते हैं । अगर इस प्रकार के व्याख्यानों में घोर असत्य बोलकर इस भोली-भाली जनता को जो शास्त्र सिद्धान्त से अपरिचित है सत्पथ से गुमराह करेंगे तो इस असत्य भाषण के छल कपट युक्त, पापपूर्ण प्रबन्ध से न आपका कल्याण होगा, न देश का कल्याण होगा और न आपकी इस मिथ्यावाणी को वेदवाणी मानकर इसका अनुकरण करने वाले भी सब इसी प्रकार असत्य सिद्धान्तों को सिद्ध करेंगे । इस प्रकार आपके इस श्रुति, शास्त्र, इतिहास विरुद्ध असत्य भाषण के पाप परिणाम से हिन्दू जाति का, ऋषिपरम्परा का यह चमकता हुआ गौरव सूर्य सदैव के लिए अस्त हो जायेगा । अतः भारत गौरव रवि के राहु बनकर राष्ट्र में दुःखद रात्रि लाने का प्रयास न करें । हिन्दूराष्ट्र के प्रति आपकी यह अति कृपा होगी ।

अब द्वितीय पक्ष में अध्यात्मनिष्ठ धर्म प्राण भारतीय जनता से निवेदन है कि कलह-क्रान्ति, राग-द्वेष से पूर्ण विविध मानस रोगों से पीड़ित, ऐसे शास्त्र विरुद्ध उपदेशक महात्मा को अपने आध्यात्मिक कार्यक्रमों में बुलाकर देश के धन और धर्म दोनों की हानि न करे । क्योंकि जो स्वयं ही मानस रोगों से पीड़ित है वह दूसरों का क्या हित करेगा ? जो स्वयं ही रागद्वेष में जल रहा है, वह दूसरों को शान्ति कैसे दे सकेगा ? जो स्वयं ही शास्त्र विरुद्ध बोल रहा है, क्या उसके उपदेशों से समाज को सत्पथ का दर्शन हो सकेगा ?

इनकी विद्या और बुद्धि का शास्त्रानुकूल तर्कानुसंधान के द्वारा पहले परीक्षण करो, बाद में सनातन धर्म के मञ्च पर बुलाओ । सनातन धर्म का मञ्च बच्चों का खेलवाड़ न बनाया जाय न ही राग-द्वेष, कलह क्रान्ति का अड्डा बनाया जाय । आज प्रवक्ता अपने पद ऐश्वर्य के चमत्कार में जनता को डालकर अपने असत्य को भी 'शास्त्र' सिद्ध करना चाहते हैं । अतः परीक्षण अवश्य करना चाहिए ।

यथा—एक सज्जन एक बार खान-पान सम्बन्धी बहुत कुछ कल्पनाएँ करके दो किलो माँस अपने घर लाए। अपनी स्त्री को उसे बहुत [सुन्दर प्रकार] स्वादिष्ट तैयार करने का आदेश देकर स्वयं किसी आवश्यक कार्य से बाहर चले गये। उनकी स्त्री ने अपने निजी स्वार्थों से प्रेरित होकर उस माँस को छिपाकर कहीं रख दिया। थोड़ी देर के पश्चात् वह सज्जन वापस आये और अपनी पत्नी से पूछा, 'मांस पका लिया ?' स्त्री ने बहुत ही कृत्रिम उदास मुँह से कहा, 'माँस तो यह घर की पालतू बिल्ली खा गई'। यह सुनकर वह आदमी अत्यधिक गम्भीर हो गया। उसी अवस्था में उसे एक उपाय सूझा और वह पड़ोसी के घर से तराजू उठा लाया। बिल्ली को वजन किया जो कि पहले से ही वजन की हुई थी। उसने देखा बिल्ली वजन में ठीक दो किलो निकली। फिर उसने अपनी पत्नी से पूछा कि 'यदि यह माँस है तो बिल्ली कहाँ ? और यदि यह बिल्ली है तो मांस कहाँ ? पत्नी को इस बात की स्वप्न तक में कल्पना नहीं थी कि बिल्ली भी वजन की जा सकती है। यह है तर्कानुसंधान। यह है विचार और विवेक की कसौटी।

इसी प्रकार उस असत्यतापूर्ण प्रवचन को ध्यान में रखते हुए श्री स्वामी जी से पूछो "आपने उपनिषद् पढ़े हैं ? महाभारत पढ़ा है ? शंकर दिग्विजय आदि सद्ग्रन्थों को कभी देखा है ? अगर उपरोक्त ग्रन्थों को पढ़ा है, तो बताओ, उनमें आपके कथनानुसार कहाँ लिखा है ? यदि आपकी बात सत्य है तो उपनिषद् महाभारत आदि सद्ग्रन्थ कहाँ ? और यदि उपनिषद्, महाभारत आदि सद्ग्रन्थ सत्य हैं तो आपकी बात कहाँ ?

अब प्रश्न यह है कि आपकी इस मिथ्या वाणी को कसौटी रूप प्रमाण मान कर उपनिषद् महाभारत आदि शास्त्रों को कसा जाय या उपरोक्त ग्रन्थों को कसौटी मानकर आपकी वाणी कसी जाये ? अर्थात् आपकी बात कसने के लिए यह शास्त्र कसौटी हैं या शास्त्र कसने के लिए आपकी बात कसौटी है ?

अरे बाबा ! न कुछ पढ़ा न लिखा केवल व्यर्थ का कोरा अभिमान लेकर चल दिये सनातन धर्म के प्राण मञ्च से देश का कल्याण करने के लिए। शायद स्वप्न तक में भी यह ध्यान नहीं था कि यहाँ नैमिषारण्य में भी हमारे व्यक्तित्व और वाणी को वजन किया जा सकता है। आपने तो, यह सोचा होगा कि यह नैमिष तो अरण्य है। यहाँ चाहे जो बोलो, सब ठीक है। क्योंकि इसका नाम ही नैमिष+अरण्य है। परन्तु स्वामी जी ! यह अरण्य तो है लेकिन आपकी कल्पना के अनुरूप उल्टे-सीधे सत्य-मिथ्या सिद्धान्त दिमाग में रखकर स्वच्छन्द-वाणी की उछल कूद करने वाला अरण्य नहीं है; अपितु यह वह अरण्य है जहाँ पर कि इतना सोच समझकर व्यवस्थित बोला और लिखा गया था जिससे कि सहस्रों का कल्याण हुआ और अठारह पुराणों का निर्माण हुआ।

स्वामी जी महाराज ! आपकी शास्त्र विरुद्ध वाक् स्वच्छन्दता को देखकर

ऐसा लगता है कि आपने तुलसीकृत रामायण भी आदि से अन्त तक ध्यान देकर नहीं पढ़ा है। यदि इस ग्रन्थ को ही किसी महापुरुष के चरण सानिध्य में बैठकर जिज्ञासु भाव से आद्योपान्त पढ़ लिया होता तो भी व्यावहारिक ज्ञान हो गया होता और 'श्रुति संत विरोधी' नहीं होते। इसलिए स्वामी जी महाराज! मिथ्या मान-प्रतिष्ठा के लोभ में पड़कर दुनिया को धोखा मत दीजिए। सोचो जब जरा सा धोखे में भूल से असत्य बोलने पर धर्मावतार महाराजा युधिष्ठिर को भी थोड़ी देर के लिए नरक का दर्शन करना पड़ा था, तो आजकल कलयुग के महापुरूष जो रात दिन देश और समाज को चुनौती दे-देकर दावे के साथ धड़-धड़ झूठ बोल रहे हैं; इनकी क्या दशा होगी? धर्मशास्त्र के अनुसार यह कहाँ जायेंगे? और देश को क्या बनायेगें।

अतः ऐसे धर्माचार्य की कम से कम थोड़ी बहुत व्यावहारिक परीक्षा लेकर ही सनातन धर्म के मञ्च पर बोलने के लिए अनुमति देना चाहिए।

और जहाँ तक स्वामी जी ने हमारे ऊपर व्यक्तिगत रूप से कीचड़ उछालते हुए कहा, 'आजकल सनातन धर्म का मञ्च ऐसा छिछला हो गया, दर्जा चार पास नहीं और वह भी बाबा जी बन करके उपदेश देने लगे।' यह भी वाक्य स्वामी जी महाराज विशाल हृदय से नहीं बोले। जिस मूलभूत विषय पर चर्चा हो रही थी, उसी विषय को युक्ति प्रमाण और अनुभव से विपक्ष का खण्डन एवं स्वपक्ष का मण्डन करते हुए बोलना चाहिए था; परन्तु यह न करके व्यक्तिगत विपक्ष की हृदय विदारक कठोर शब्दों से मान हानि करना यह हृदय की संकीर्णता एवं स्वपक्ष की अनभिज्ञता का परिचायक मात्र है तथा "कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी," "सबहिं मानप्रद आपु अमानी" "शीतलता सरलता मयत्री" "परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं" "सरल स्वभाव सबहिं सन प्रीती" आदि विशाल सन्त लक्षण के सर्वथा विपरीत है।

जहाँ तक आपने व्यक्तिगत कीचड़ उछालते हुए कहा, 'दर्जा चार.................उपदेश करने लगे।' महाराज जी! उसमें तो उसकी विशेषता ही है और प्रत्यक्ष भगवत्कृपा है। जो कि आपके अनुसार दर्जा चार पास नहीं और सबका बाबा बन गया साथ ही उपदेश भी करने लगा। देश विदेश में ऐसे बहुत से बाबा हुए हैं; जहाँ पर "मूक होइ वाचाल" रूपी अहेतुकी भगवत्कृपा का साक्षात् दर्शन हुआ है। "जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥" यथा-श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस, बालब्रह्मचारी श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज, चित्रकूट पीलीकोठी, श्री माता आनन्दमयी। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जिनको पूज्य चरण श्री स्वामी करपात्री जी महाराज चलती फिरती '*Library*' [लाइब्रेरी] कहा करते थे। उन्होंने भी

दर्जा चार अनुत्तीर्ण श्री माता आनन्दमयी के पवित्र श्री चरणों में अपने आपको श्रद्धाभक्ति पूर्वक समर्पित करके शिष्यत्व स्वीकार किया था और ठीक यही हाल स्वामी विवेकानन्द जी महाराज का श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव जी के प्रति रहा। यह पवित्र भगवत्कृपा जिस पर नहीं होती है वह परम पवित्र स्थान पर भी बैठकर आक्रोशपूर्वक हृदयविदारक कटु वाचारम्भण ही करता है। यथा— भगवान के पवित्र मन्दिर के ऊपर शुचि कलश पर भी एक काक बैठकर सभी के लिए कर्कश अवांछनीय बोली ही बोलता है। जैसे-साक्षात् नारायण स्वरूप "अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणां" पर भी लक्ष्मी का वाहन बैठकर जगत् अमाङ्गलिक शब्द ही बोलता है।

महाराज जी ! इसमें क्या किसी का दोष ? यह तो जो दर्जा चार पास नहीं हैं उसमें भगवत्कृपा का साक्षात् दर्शन है। और उन दोनों पक्षियों का प्राकृतिक स्वभाव है। उस भगवत्कृपा के प्रति किसी भी प्रकार की कुदृष्टि रखना तो मानो साक्षात् नारायण के प्रति ही विरोध है। यद्यपि 'स्वभावो दुर्तिक्रमः' फिर भी निवेदन है कि स्वभाव परिवर्तित करने का प्रयास किया जाय।

पुनश्च सामान्यत: द्वितीय व्यवहारिक विधि से भी किसी व्यक्ति को शैक्षिक योग्यतादि के विषय में बिना उचित ज्ञान प्राप्त किये इस प्रकार की बात बोलना मानवता एवं साधुता का उपहास मात्र है और अपनी ही कुशिक्षा का परिचायक है। हमारे आपके मध्य में कौन दर्जा चार पास अथवा फेल है यह बात आपको उसी दिन [दिनांक २८-१०-८५ को] ज्ञात हो जाती, यदि आप वितण्डावाद का आश्रय न लिये होते। फिर भी उस समय पर जो कुछ भी जिस विधि से आप बोले, उससे आपकी शैक्षिक योग्यता का समाज के बुद्धिजीवी व्यक्तियों ने दर्शन किया। किसी शिष्ट घर का दर्जा चार फेल [अनुत्तीर्ण] भी लड़का कुछ सोच-समझकर मर्यादित बोलता है परन्तु आपकी मर्यादा से शत्रुता रखने वाली भाषा को देखकर, निश्चित ही पता लगाना कठिन है कि आप कौन सी दर्जा फेल अथवा पास हैं ? फिर भी "लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि:" के न्यायानुसार समाज कुछ अनुमान तो लगायेगा ही।

इत्यलम्

स्वामी जी की एक और महत्त्वाकांक्षा तथा उसका उत्तर

उसी अपने विवादास्पद भाषण के प्रवाह में आगे स्वामी जी महाराज बोले, "और अब भी उस लड़की से कहिए कि विवाह किए बिना तेरा कल्याण नहीं होगा, वह लड़की अगर विवाह करे तो हम आ करके उसे उसके सौभाग्य का आशीर्वाद देवें।" किसी वर-कन्या के पवित्र विवाह

संस्कार में जाकर उन्हें अनेक सौभाग्यार्थं आशीर्वादात्मक सद्भावनाएं देना महान् सुन्दर कार्य है परन्तु आप जिस आश्रम में हैं उस आश्रम के व्यक्ति को [संन्यासी को] उदार भाव से विवाहों के राग-रंग में जाकर आशीर्वाद देने के लिए शास्त्र की आज्ञा नहीं है। यद्यपि वासना का प्रवाह साधना के बाँध को तोड़ने के लिए प्रत्येक अवस्था में हर क्षण लालायित रहता है, फिर भी साधक का यह कर्तव्य है कि वह वासना के प्रवाह की गति, दिशा और मोड़ पर कड़ी दृष्टि रखते हुए शास्त्र की आज्ञा के अनुसार सावधानी पूर्वक साधना के बाँध को सुदृढ़ करता रहे किसी को आशीर्वाद आदि देने के लिए लालायित न हो। क्योंकि शास्त्र की आज्ञा है कि चतुर्थाश्रमी—

'निःस्तुति निर्नमस्कारो निः स्वधाकार एव च'

[नारद परिव्राजकोपनिषद् ६/३८]

अर्थ—यति न स्तुति करे न नमस्कार करे, न श्राद्ध करे।

नार्चनं पितृकार्यं च तीर्थं यात्रा व्रतानि च।
सन्त्यजेत् सर्वकर्माणि लोकाचारं च सर्वशः ॥

शास्त्र ने तो यहाँ तक कहा है कि—

आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदोऽपि च।
सम्मानं च न ब्रूयात् मुनिः मोक्ष परायणः [परमहंस धर्म निर्णयः]
आशी र्युक्तानि कर्माणि हिंसा युक्तानि यानि च।
लोक संग्रह युक्तानि न कुर्यान्न कारयेत् ॥

नारद परिव्राजकोपनिषद् ५/२०½]

अर्थ:— जिसमें आशीर्वाद देना पड़े या जिसमें किसी की हिंसा हो अथवा जिसमें लोक संग्रह हो ऐसे कार्य यति न करे, न करावे।

इस प्रकार साक्षात् श्रुति भगवती सामान्य रूप से भी आशीर्वाद आदि की प्रवृत्ति को यति के लिए निषेध कर रही है, फिर विवाह आदि में आशीर्वाद का बहाना बनाकर जाने के लिए तो कहना ही क्या है ! इसलिए स्वामी जी महा-राज ! पूर्णरूपेण ही श्रुति आज्ञा का तिरस्कार न करें तो अच्छा है। फिर भी

जौ तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। वर कन्या अनेक जग माहीं।

परन्तु भारतवर्ष की आध्यात्मिक पथ पर गार्गी और सुलभा के चरण चिह्नों का अनुकरण करने वाली बालिका या नारी हों; उनके प्रति आप ऐसे संकल्प न करें। अति कृपा होगी।

वैसे यदि आपको आशीर्वाद देना ही है, शास्त्र की आज्ञा नहीं मानना है और मनमानी ही करना हैं तो मनु महाराज ने जो आठ प्रकार के विवाह बताए हैं—

ब्राह्म दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।

(मनुस्मृति ३/२१)

अर्थ:- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ बहुत तुच्छ पैशाच (ये आठ प्रकार के विवाह हैं) ।

इन आठ प्रकार के विवाहों में से कोई न कोई विवाह हर समय कहीं न कहीं समाज में हुआ करता है । अतः इस मंगलमयी सुहावनी वेला में उपस्थित होकर अपने शुभाशीष से वर-कन्या के सौभाग्य को अचल बनावें । माता-पिता सहित वे लोग आपकी उपस्थिति एवं आशीर्वाद से अपने को महान् सौभाग्यशाली समझेंगे । इस प्रकार उभय पक्षों में प्रसन्नता होगी । परन्तु यहाँ पर आप ऐसा संकल्प तक करने की कृपा न करके अखण्ड आध्यामिक सफलता प्राप्त करने के लिए ही आशीर्वाद देवें ।

परन्तु फिर भी सजातीय एवं समाश्रमी होने के कारण मैं अपके हित के लिए आपसे पुनः प्रार्थना करता हूँ कि आप ऐसे सांसारिक अनात्मसंकल्प को क्षण मात्र के लिए भी अपने अन्तःकरण में स्थान न देवें । क्योंकि अनात्म संकल्पों को प्राश्रय देने के लिए यह आश्रम नहीं है । अतः अखिल अनात्म बातों को छोड़कर अपने मन बुद्धि को अहर्निश ब्रह्मानुसंधान में लगावें और उसी दिशा में आध्यामिक जिज्ञासुओं एवं परिव्राजकों को भी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करें, जैसीकि सभी परमार्थ जिज्ञासु आप से आशा करते हैं इसमें "सुरसरि सम सब कर हित होई" ।

ॐ अपशम् ।

एक और अशोभनीय वाक्य तथा उसका उत्तर

अपने द्वन्द्वात्मक प्रवचन में स्वामी जी ने पूर्व पक्ष को स्थापित करते हुए यह कहा कि 'आज कल लोग कहते हैं शास्त्रों के नियम बहुत पुराने हो गये इस लिए उनको बदलना चाहिए" इस बात के उत्तर में स्वयं ही बोले, "शास्त्र के नियम पुराने हो गये हैं, इस लिए बदलना चाहिए । मैं कहता हूँ कि बहुत सी चीजें पुरानी हो गयी हैं उन्हें भी बदलो । जैसे अभी तक बहुत दिनों से ऊपर से खाते रहे और नीचे निकालते रहे हो । अब नीचे से खाओ और ऊपर से निकालो" इसी प्रकार और भी एक दो बातें कहीं । इस प्रकार की अशोभनीय भाषा की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया तब वह अपनी अशोभनीय शैली और भाषा के ऊपर सुन्दर पर्दा डालते हुए एक और

असत्य बोले । यथा– "हमने ठीक कहा, लोगों को समझाने के लिए लोगों की भाषा में प्रयोग करना पड़ता है । "धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी का प्रवचन काशी में भी केवल सत्रह आदमी समझते थे, अट्ठारहवाँ कोई नहीं । न समझता था न सुनने जाता था, न कोई सुनने जाता था । धीरे-धीरे उनको इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करमा पड़ा जो सर्व साधारण की समझ में आ जाये । "

अबकी बार अपनी अशोभनीय भाषा पर पर्दा डालने के लिए पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज को चपेट में लिया । क्याही अच्छा रहता कि उन सत्रहों के नाम भी गिना देते ! जहाँ तक पूज्य श्री स्वामी करपात्रीं जी महाराज की बात है, यद्यपि उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ थी फिर भी यह नहीं था कि उनके प्रवचन को केवल सत्रह आदमी ही काशी में समझते थे । यह बिल्कुल असत्य है । जब काशी के विद्वानों में केवल सत्रह आदमी समझते थे तो काशी के बाहर बिल्कुल ही कोई नहीं समझ पाता होगा, परिणाम शून्य आता होगा । परन्तु यह बात नहीं थी । पूज्य श्री स्वामी जी महाराज सर्वत्र सम्मेलनों में जाया करते थे और वहाँ पर बोलते भी थे तथा उनके भाषण में हजारों की संख्या में समाज भी एकत्र होता था । यह बात किसी से छिपी नहीं है सभी लोग बड़ी प्रसन्नता से उनकी बात सुनते, समझते थे । आज भी जो उनके द्वारा लिखित हिन्दी ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ कर कोई भी हिन्दी समझने वाला व्यक्ति देखें, समझ में आते हैं या नहीं ! ग्रन्थों के नाम यथाः– (१) संघर्ष और शान्ति (२) राहुल की भ्रान्ति (३) भक्ति सुधा (४) रामायण मीमांसा (५) मार्क्सवाद और रामराज्य आदि । उनके क्लिष्ट ग्रन्थों को भी तत्तत् विषयों के समझदार समझते हैं । श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी जिस मूल भूत लेख के आधार पर यहाँ बोले हैं । पूज्य श्री स्वामी एकपात्री जी के उसी मूल लेख को हम यहाँ पर उद्धरित कर रहे हैं । पाठक गण पढ़ें और देखें कि वे कैसे बोलते और लिखते थे । पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज 'भक्ति सुधा' नामक अपने ग्रन्थ में लिखते हैं:-

"लोग बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि " अब गत शताब्दियों के दिन लद गये । आज के वैज्ञानिक युग में पुराने जमाने के सड़े गले नियमों की कोई आवश्यकता नहीं है । मनुष्य को चाहिए कि दुनिया के परिवर्तन के साथ ही अपने आपको परिवर्तित करते चले । देश, काल की परिस्थिति के अनुसार धर्म, कर्म और शास्त्र का निर्माण होना चाहिए । " इन लोगों की बातों पर ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि यह विचार भी अब पुराने होते जा रहे हैं............... । संसार में कोई चीज पुरानी या नई

होने से ही आदरणीय नहीं होती, किन्तु उसके गुणागुण की ओर अच्छी तरह से ध्यान देना चाहिए। पृथ्वी, आकाश, वायु आत्मा और स्वास्थ्य पुराना ही है, परन्तु क्या इतने से ही यह सब हेय है? भोजन करके भूख मिटानेऔर पानी पीकर प्यास मिटाने की पद्धति पुरानी ही है, फिर भी क्या त्याज्य है? रोग, विपत्ति नवीन होने पर भी क्या आदरणीय हैं? यदि नहीं, तब तो अनादि अपौरुषेय वेद आदि सच्छास्त्रों द्वारा प्रदर्शित मार्ग से लौकिक–पारलौकिक उन्नति के लिए प्रयत्न करना ही उचित है।"

यह है पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज की भाषा, जो कि अपने आप में कितनी परिष्कृत तर्कपूर्ण एवं मर्यादित है। जिसकी समानता श्री स्वामी जी ने अपने उपरोक्त अशोभनीय एवं अमर्यादित वाक्य से दिया। देश–विदेश के विद्वान् इस समानता को सत्य की कसौटी पर कसें और देखें कि क्या वास्तव में दोनों में समानता है? कहाँ पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की गम्भीर मर्यादित, शिष्ट, चित्ताकर्षक भाषा और कहाँ हास-व्यंग्यपूर्ण छिछली और अमर्यादित भाषा का यह वाक्य! दोनों की समानता करना अंधकार और प्रकाश की समानता करना है; जो कि कभी संभव नही है।

अतः श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी से निवेदन है कि अपनी त्रुटि को छिपाने के लिए किसी भी महापुरुष में अन्यथा आरोपण करके उसके भी गौरव को धूमिल करने की चेष्टा न करें। न्यायोचित बात तो यह है कि अपनी दुर्बलता का तटस्थ होकर अनुभव करते हुए पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज एवं विश्व के अन्यान्य महापुरुषों की पवित्र मर्यादित, परिष्कृत, गम्भीर एवं श्रवण सुखद भाषा शैली को पढ़ें, और उच्चतम जीवन आदर्शों का भावना जगत में ज्ञान चक्षुओं से अनुभवात्मक दर्शन करें तथा उसे अपने दैनिक जीवन में अपनाकर अपनी अमर्यादित भाषा और मिथ्या भाषण को समाप्त करें। इससे आगामी पीढ़ी का सुन्दर निर्माण होगा और समाज को एक मर्यादित और व्यवस्थित शिक्षात्मक दिशा मिलेगी जैसा कि हमारे पूर्वज महापुरुषों का जाज्वल्यमान आदर्श सदैव से चला आ रहा है। इस प्रकार की अमर्यादित भाषा एवं असत्य भाषण से न बोलने वाले का कल्याण होता है और न सुनने वाले का ही होता है। इसलिए ऐसी भाषा एवं शैली का प्रयोग किया जाय जिससे 'कतह सुनत सब कर हित होई'

इत्यलम्।

एक और मिथ्या कथन

श्री स्वामी जो महाराज ने अपने वाद विवादत्मक भाषण प्रवाह के मध्य में हमारे और पूज्य श्री करपात्री जी महाराज के परिचय, संबंध और सान्निध्य को भी मिथ्या

सिद्ध करते हुए जो कहा, "आपको तो हमने कभी स्वामी जी के पास देखा नही। सारी उम्र रहा स्वामी जी के पास मैं, आपको कभी देखा नही। बाल्यावस्था से हमने उनकी सेवा की और अन्त तक सेवा की।"

यह भी बात श्री स्वामी जी ने अपने विपक्ष को धुंधलाकर समाज से मात्र प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कहा। पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के अनेकों दीक्षालब्ध शिष्य हैं, सहस्रों उनमें सुदृढ़ निष्ठा रखने वाले भक्त हैं तथा लाखों व्यक्ति उनके तपश्चर्यापूर्ण निष्कलंक आध्यात्मिक जीवन का अनुमोदन एवं अनुकरण करने वाले हैं। इनमें से आपने (श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी ने) क्या सभी को देखा है ? और सभीं से परिचित है ? और क्या उनके सभी शिष्यों; भक्तों, समर्थकों एवंअनुयायियों को आपके द्वारा देखा जाना संभव भी है ? तो क्या आपके न देख पाने से पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज से दीक्षा प्राप्त उनके शिष्यों और भक्तों का संबंध अन्यथा सिद्ध हो जायेगा ?

और जहाँ तक पुरी पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी ने यह कहा कि "सारी उम्र रहा स्वामी जी के पास मैं" यह भी मिथ्या कथन है। सारी उम्र यदि श्री स्वामी जी के पास रहे तो सम्पूर्ण लौकिक धर्मों से युक्त आपका गृहस्थाश्रम कैसे चला ? यदि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी रह कर प्रारम्भिक बाल्यावस्था से ही पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज का शिष्यत्व ग्रहणपूर्वक आश्रय लेकर अहर्निश सेवा में रहते तो आपकी बात मान्य हो सकती थी। फिर भी उनके सम्पूर्ण अनुयायियों का ज्ञान होना तो संभव ही नहीं था ; परन्तु ऐसा नहीं रहा। प्रायः श्री स्वामीं जी महाराज परम विरक्त अवस्था में भी एकाकी ही रहे और आचार्य कोटि में भी प्रायः अपनी गाड़ी से सर्वत्र अकेले ही जाते थे। उनके पास में एक ब्रह्मचारी और उनकी गाड़ी का चालक बस ये ही दो व्यक्ति रहते थे। और कभी कभी तो श्री स्वामी जी महाराज को अकेले ही रहना पड़ा। केवल उनका ड्राइवर ही उनके साथ रहा जिसका कि प्रमाण भारत के विभिन्न खण्डों की सहस्रों धर्मप्राण जनता है और श्री स्वामी जी के निकटस्थ व्यक्तियों से यह बात छिपी हुई नही है। जिन दिनों में पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज उत्तराखण्ड में महान तपश्चर्यापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे ; क्या तब आप उनके पास थे ? उस काल में भीं अपनी उपस्थिति पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के पास ही देह छायावत् अविभाज्य रूप से सिद्ध करने का प्रयास करें और श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के जीवन और स्वभाव से अपरिचित देश की भोली भाली जनता विश्वास भी कर लेगी तथा उससे आपकी लक्ष्यस्वरूपा प्रतिष्ठा भी आपको प्राप्त होगी। जब मैं उनके पास था तब मैंने स्वय आपको महीनों उनके पास नहीं देखा। मैं उनके सान्निध्य में रहा जिसका कि प्रमाण-कई लोग अभी ऐसे हैं जिन्होंने हमको श्री स्वामी जी के पास देखा और सभी लौकिक साक्ष्य के अतिरिक्त पू० श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा प्रदत्त मेरे पास एक ऐसा प्रमाण है, जिसको कि दुनिया का कोई भी तर्क शास्त्री मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता।

और जहाँ तक यह कहा कि "बाल्य अवस्था से हमने उनकी सेवा की और अन्त तक सेवा की" यह भी आपका स्वल्पांशिक सत्य है, जिसको कि काशी स्थित 'धर्मसंघ' का प्रत्येक व्यक्ति जानता है । पुरी पीठाधीश्वर जी महाराज । आज पूज्य चरण श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के ब्रह्मलीन हो जाने पर समाज से प्रतिष्ठा बटोरने के लिए ऐसी बातें करना मात्र धोखा है । कभी कभी जब वे अकेले ही अपनी गाड़ी से चलते थे और अपने हाथ से ही उस काल में उन्हें प्रकारान्तर से अपनी खिचड़ी भी तैयार करना पड़ा, उस समय बाल्यावस्था से लेकर अन्त तक सेवा करने वाले आप कहाँ थे ?

अत: स्वामी जी महाराज । आपसे निवेदन है कि इस प्रकार की मिथ्या अनात्मवृत्ति से बचा जाय तो अच्छा रहेगा ।

एक घन्टा में १७ असत्य

१– किसी भी ग्रन्थ में यह नहीं लिखा है कि गार्गी जन्म भर कुमारी रही । उसने विवाह नहीं किया इत्यादि वाक्यों से गार्गी को विवाहिता सिद्ध करना यह असत्य है ।

२– सुलभा का नाम लेकर जो स्वकल्पित तत्त्वज्ञानी की परिभाषा किया "मुझे आत्मज्ञान है, तत्त्वज्ञान है और उसका प्रमाण यह है कि चौबीस घंटे मैं तेरे शरीर में रहूँगी और शरीर में रहकर के चौबीस घंटे तक एक बूंद पानी नहीं पियूँगी, और अन्न भी ग्रहण नहीं करूँगी । जो तत्त्वज्ञानी होता है उसको न भूख लगती है न प्यास लगती है अगर मुझे भूख, प्यास लगे तो समझ लेना कि मुझको तत्त्वज्ञान नहीं है । तू कैसा तत्त्वज्ञानी है ।" यह असत्य है ।

३– "किसी ने मुझसे विवाह नहीं किया, इसलिए (मैं) कुमारी रह गयी ।" ऐसा सुलभा ने कहा, यह जो स्वामी जी का कथन है वह असत्य है ।

४– जनक ने सुलभा के लिए 'व्यभिचार' शब्द विशेष का प्रयोग किया, यह स्वामी जी का कथन असत्य है ।

५– अनादि काल से चले आ रहे हिन्दू जाति के इतिहास में केवल एक स्त्री ऐसी थी । जिसने विवाह नहीं किया और दूसरा कोई प्रमाण नहीं है, यह कथन असत्य है ।

६– "मण्डन मिश्र और शंकराचार्य ने एक दूसरे की माँ को राँड़ कहा" स्वामी जी का यह कथन झूठ (असत्य) है ।

७– "भगवान शंकराचार्य ने कहा हमने तो सुना (शराब) हरी होती है ।" श्री स्वामी जी का यह कथन असत्य है ।

८– "विना (वेणु) दण्ड के संन्यास नहीं होता ।" यह स्वामी जी का कथन भ्रमोत्पादक असत्य है ।

९– "दण्ड के परित्याग का कहीं विधान भी नहीं हैं।" स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

१०– "धर्मं सम्राट स्वामी करपात्री जी का प्रवचन काशी में भी केवल सत्तरह आदमी समझते थे। अट्ठारहवाँ कोई नहीं। न कोई समझता था, न सुनने जाता था।" स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

११– "गार्गी ने विवाह किया। विवाह नहीं करती, तो याज्ञवल्क्य आदि उससे बात तक नहीं करते। कहते तुम अपवित्र हो, तुमसे बात नहीं करते।" यह स्वामी जी के द्वारा कहा हुआ हेतु भ्रमोत्पादक असत्य है।

१२– "कुमारी विश्वभारती के लिए कहा कुछ जानती नहीं, पढ़ी नहीं, लिखी नहीं, काला अक्षर भैंस बराबर।" श्री स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

१३– "शाण्डिली के ही पति का नाम नहीं है" स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

१४– "वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत में तो स्त्रियों के संन्यास का तो कहीं उल्लेख नहीं। आज तक किसी ने संन्यास लिया नहीं।" स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

१५– "दर्जा चार पास नहीं, वह भी बाबा जी बनकर उपदेश करने लगे"। यह जो व्यक्तिगत संकेत करते हुए हमारे विषय में कहा, स्वामी जी का यह कथन असत्य है।

१६– "स्वामी जी महाराज के (स्वामी करपात्री जी महाराज के) जीवन को जितना हम जानते हैं, उतना संसार में कोई जानने वाला नहीं।" स्वामी जी का यह कथन मिथ्याभिमान पूर्वक असत्य है।

१७– "आपको तो हमने स्वामी जी के पास देखा नहीं" यह वाक्य कह करके पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज और हमारे (हरिहरानन्द के) मध्य में कोई संबंध नहीं था। यह जो श्री स्वामी जी ने अधिकारपूर्वक सिद्ध किया, इस प्रकार का सिद्ध करना असत्य है।

१८– और अन्त में हमारे सम्माननीय श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज ने अपने भाषण के मध्य में ही अपने सत्तरह असत्यों को सत्य सिद्ध करने के लिए स्वेच्छापूर्वक शपथ ग्रहण किया। यथा—'हम धर्मंशास्त्र के विरुद्ध बोलें तो नरक में जायें।' यह शपथ भी अव्यवहारिक एवं मिथ्या [असत्य] है।

इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज ने अपने एक घंटे के लघु वाद विवादात्मक भाषण में सत्तरह असत्य बोले। इतने पर भी दावे के साथ अट्ठारहवीं मिथ्या शपथ ग्रहण किया। यथा—'हम धर्मंशास्त्र के विरुद्ध बोलें तो नरक में जायें।'

इस प्रकार धड़ाधड़ डंके की चोट पर असत्य बोलना और सिंह गर्जन से कसम खाकर उसे सत्य की सुन्दर बहुरंगी दुशाला ओढ़ा देना ।

यह सामान्य आदमी के वश की बात नहीं है । उस समय [ता० २८-१०-८५ को रात्रि में मिश्रित धर्म मन्च पर] इस तूफानी वितण्डावाद में असत्य की झड़ी लगती हुई देखकर हम आश्चर्य चकित हो गए कि किस स्थान से क्या बोला जा रहा है ! स्वामी जी के यह कहने पर भी कि, 'व्याख्यान नहीं देना । मैंने आपकी बात का 'टू दि प्वाइन्ट' जवाब दिया । व्याख्यान नहीं दिया । इसीलिए कहा आप व्याख्यान मत दीजिए । यह बताइये कि कौन पुस्तक में लिखा है कि गार्गी ने विवाह नहीं किया ? या गार्गी जीवन भर ब्रह्मचारिणी रहीं । आपके पास कोई प्रमाण हो कि गार्गी ने विवाह नहीं किया तो बोलिए । नहीं तो स्वीकार करके अपने शब्दों को वापस लीजिए ।'

मैंने यह सोचकर कि जब 'टू दि प्वाइन्ट' इस प्रकार बोला जा रहा है तब 'आउट ऑफ प्वाइन्ट' क्या बोला जायगा । मैंने कोई उत्तर नहीं दिया । हृदय बज्र बैठारि चुपचाप पूर्ण मौन होकर जो कुछ बोला गया, सुनता रहा । क्योंकि जहाँ पर इस प्रकार अन्धाधुन्ध मानवता और साधुता की मर्यादाओं को तोड़कर असत्य और अशोभनीय को सत्य और शोभनीय हठात् सिद्ध किया जा रहा हो तथा 'विद्या विवादाय' और 'सब मिलि बोलो वाह गुरू' ऐसा वातावरण हो वहाँ सन्त और शास्त्रों की आज्ञा है कि 'तत्र मौनं हि शोभनम् ।'

यद्यपि स्वामी जी महाराज की प्रत्येक बात का उसी समय शास्त्रानुकूल सुदृढ़ उत्तर दिया जा सकता था परन्तु वह समय उत्तर देने के योग्य नहीं था । उस समय हमारे सभी उत्तर व्यंग्य और उपहास के द्वारा हवा में उड़ा दिये जाते आज स्वामी जी महाराज की चुनौती को स्वीकार करते हुए उनके सभी प्रश्नों सत्याभासित कल्पित तथ्यों का सप्रमाण उत्तर दिया गया । इन सभी उत्तरों को पढ़कर यदि स्वामी जी महाराज चाहें तो अपनी ही चुनौती और प्रतिज्ञा को अपने पक्ष में स्मरण करते हुए साधुता और मानवता की मर्यादाओं का उल्लंघन न करते हुए नारायण स्वरूप पूज्य सद्गुरूदेव भगवान के आशीर्वाद एवं नैमिष पीठाधीश्वरी वाक् अधिष्ठात्री, त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी महाशक्तिस्वरूपा भगवती ललिताम्बा के प्रसादस्वरूप इस लघुग्रन्थ का सप्रमाण लिखितरूप में खण्डन करने की कृपा कर ।

अथवा पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरू शंकराचार्य स्वामी श्री निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज अपने शब्दों को वापस लेने की कृपा करें ।

अन्त में मैं अपने पूज्य गुरूजनों सूत्रकार, पूज्यपाद श्री वेदव्यास जी महाराज को, जगत्प्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय, पूज्यपाद भगवान भाष्यकार जगद्गुरू आद्यशंकराचार्य जी महाराज को प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद वेदवेदान्ततत्त्ववेत्ता, परमवीतराग, ज्ञान वैराग्यभक्तितपोनिष्ठ यतिचक्र चूडामणि, धर्मसम्राट, अभिनवशंकरा-चार्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज को, प्रातः स्मरणीय, पूज्यपाद, ज्ञानवैराग्य उपरामतामूर्ति बालब्रह्मचारी, श्रीमत् स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज अवधूत चित्रकूट प्रातः स्मरणीय, पूज्यपाद, ज्ञानवैराग्य तपोमूर्ति, श्रीमत् स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज अवधूत गंगोत्री, परमवीतराग, तपोनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, श्रीमत् नारायण स्वामी जी महाराज गंगातटवासी (टाटवाले) और अन्त में ज्ञानवैराग्यभक्ति तपोनिष्ठ, मानवता एवं साधुता की साक्षात् मूर्ति, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी अवधूतानन्द जी महाराज परमहंस जिनकी कि साक्षात् कृपा एवं करूणा से परमतत्त्व का साक्षात्कार करके जीवन में कृतकृत्यता की अनुभूति की तथा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी पर्यन्त श्रोत्रिय, तपोनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ जितने भी महा-पुरूष हैं, वह चाहे किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो उन सभी अमलात्मा महात्माओं के चरणारविन्दों में श्रद्धा भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि सहित प्रणाम करते हुए लेखनी को स्थगित कर रहा हूँ।

ॐ उपशम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
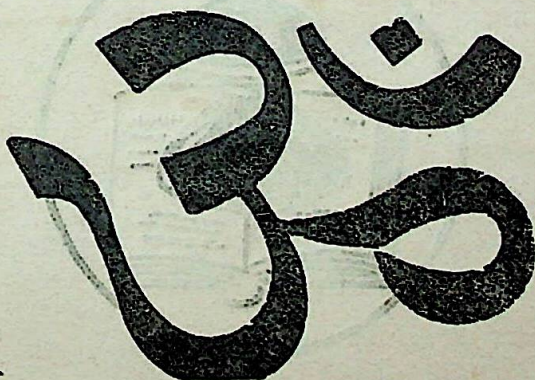
ॐ असतो मा सद्गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

ॐ सर्वेभवन्तु सुखिनः ।

सर्वेसन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणिपश्यन्तु

मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!